सत्यमेव जयते

भारत के विधि आयोग

की

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण; सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क तथा स्वर्ण (नियंत्रण) और आयकर अपीलीय अधिकरण की कार्य प्रणाली की पुनरीक्षा

विषय पर

एक सौ बासठवीं रिपोर्ट

1998

भारत के विधि आयोग

की

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण; सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क तथा स्वर्ण (नियंत्रण) और आयकर अपीलीय अधिकरण की कार्य प्रणाली की पुनरीक्षा

विषय पर

एक सौ बासठवीं रिपोर्ट

1998

59 LJ&CA/2000—1

अ.शा.सं. 6(3)(21)/93-एल. सी. (एल. एस.)

न्यायमूर्ति
बी.पी. जीवन रेड्डी
चेयरमैन, भारत का विधि
आयोग

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3384475
निवास : 1, जनपथ
नई दिल्ली-110011
दूरभाष : 3019465

अगस्त 14, 1998

प्रिय डा. एम. थम्बी दुरै,

मैं, एतद्द्वारा "केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण; सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण और आयकर अपील अधिकरण के कार्यकरण के पुनर्विलोकन पर" 162वीं रिपोर्ट अग्रेषित कर रहा हूँ।

2. भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने आर. के. जैन बनाम भारत संघ, (1993) 4 सु. को. 119 में विधि आयोग को भारत में विभिन्न अधिकरणों के कार्यकरण का व्यापक अध्ययन करने तथा उनके कार्यकरण सुधार देने हेतु निदेश दिया है। यह देखा गया कि आयोग विभिन्न संविधियों में सुझाव भी दे सकता है और एक ऐसा आदर्श विकसित कर सकेगा जिसके आधार पर अधिक स्वतन्त्रता सुनिश्चित कराने की दृष्टि से अधिकरणों का गठन अथवा पुनर्गठन किया जा सकेगा। इस संबंध में संगत टिप्पणियों का उद्धरण रिपोर्ट के पैरा 1.1 और 1.2 में दिया गया है।

3. तदनुसार, पिछले आयोगों ने यह मामला विचारार्थ लिया, एक प्रश्नावली और एक पुनरीक्षित अतिरिक्त प्रश्नावली तैयार की और इसे सभी संबंधित व्यक्तियों, विभागों तथा अधिकरणों के विचार जानने के लिए प्रचालित किया। आयोग को विभिन्न श्रोतों से उनके विचार, सुझाव और टिप्पणियां प्राप्त हुई हैं जिस पर सम्यक् रूप से विचार किया गया है।

4. आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1996 में ही प्रस्तुत कर दी होती परन्तु यह तथ्य आयोग के ध्यान में लाया गया कि प्रशासनिक अधिकरणों के कार्यकरण से संबंधित मामला और भारत के संविधान के अनुच्छेद 323-क और 323-ख की वैधता का मामला विचार करने के लिए अपेक्षाकृत एक बड़ी संविधान न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है और यह मामला उस समय विचाराधीन था।

5. उच्चतम न्यायालय के सात न्यायाधीशों की संविधान न्यायपीठ ने इस बीच एल. चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ, (1997) 3 सु. को. 261 मामले में अपना निर्णय दे दिया है जो इस अध्ययन के प्रयोजन से अत्यधिक महत्वपूर्ण और संगत है और उसे इस रिपोर्ट को तैयार करते समय ध्यान में रखा गया है।

6. जब आयोग ने उपर्युक्त आ. के. जैन के मामले में की गई टिप्पणियों के अनुसरण में अध्ययन आरम्भ किया था तो उसने अपना ध्यान तीन प्रकार के अधिकरणों अर्थात (1) केन्द्रीय प्रशासनिक अधिनियम, 1985 के अन्तर्गत गठित अधिकरण, (2) सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण, और (3) आयकर अपील अधिकरण पर केन्द्रीत किया था।

7. आयोग ने यह निश्चित किया कि इनमें से प्रत्येक प्रकार के अधिकरण के कार्यकरण की पृथक रूप से जांच करना उपयुक्त तथा सुविधाजनक होगा।

8. आयोग का यह सुविचारित मत है कि रिपोर्ट में सिफारिश किये गये आमूल परिवर्तनों पर केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, केन्द्रीय उत्पाद और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण और आयकर अपील अधिकरण के कार्यकरण में सुधार करने और एक सुदृढ़ न्याय परिदान प्रणाली जो विधि सम्मत शासन के लिए समर्पित किसी देश के कुशल प्रशासन के लिए अतिआवश्यक है, प्राप्त करने के लिए तुरन्त ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

9. अन्त में, हम इस रिपोर्ट का प्रारूप तैयार करने और आयोग को आरम्भ से अन्त तक सहायता प्रदान करने के लिए श्री सुशील कुमार, अतिरिक्त विधि अधिकारी द्वारा दिए गए बहुमूल्य सहयोग के लिए उनकी सराहना करते हैं।

सादर,

भवदीय,
(बी.पी. जीवन रेड्डी)

डा. एम. थम्बी दुरै,
माननीय विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली।

सूची-पत्र

		पृष्ठ
अध्याय-एक	प्रस्तावना	1-3
अध्याय-दो	प्रशासनिक विधि का प्रयोजन	4
अध्याय-तीन		
भाग-एक	अन्य देशों में और भारत में प्रशासनिक उपचार	5-17
भाग- दो	सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 के अन्तर्गत न्यायनिर्णय तन्त्र	18-22
अध्याय-चार	केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण	23-37
अध्याय-पाँच	सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपीलीय अधिकरण (सी. ई. जी. ए. टी)	38-40
अध्याय-छः	आयकर अपीलीय अधिकरण (आई. टी. ए. टी.)	41-42
अध्याय - सात	निष्कर्ष	43-48
उपबंध-1	दिनांक 29 अप्रैल, 1994 का पत्र	49-57
उपबंध - 2	दिनांक अगस्त, 1995 का पत्र	58-65

अध्याय-एक

प्रस्तावना

1.1 आर. के. जैन बनाम भारत संघ के मामले में (1993) 4 एस सी सी 119 (न्यायमूर्ति ए. एम. अहमदी ने अपनी ओर से और न्यायमूर्ति एम. एस. पुंछी (उस समय जो उनकी स्थिति थी) ने विधि आयोग को भारत में विभिन्न अधिकरणों के कार्यकरण का व्यापक अध्ययन करने और उनके कार्यकरण में सुधार लाने हेतु उपायों का सुझाव देने का निर्देश दिया। यह टिप्पणी भी की गई कि भारत का विधि आयोग विभिन्न कानूनों में परिवर्तन के सुझाव भी दे सकता है और ऐसा प्रतिमान विकसित कर सकता है जिसके आधार पर और अधिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की दृष्टि से अधिकरणों का गठन अथवा पुनर्गठन किया जा सके। उक्त निर्णय में की गयी सुसंगत टिप्पणियों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा :—

" 8 अन्त में, संविधान में अनुच्छेद 323-क तथा 323-ख की अन्त:स्थापना के पश्चात् देश में स्थापित किए गए विभिन्न अधिकरणों के कार्यकरण पर ध्यान देने का यह उपयुक्त समय है। विधिसम्मत शासन से जुड़े किसी देश के कुशल शासन के लिए एक सुदृढ़ न्याय-परिदान व्यवस्था अनिवार्य है। एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्याय-परिदान व्यवस्था ही, जिसमें जनता का विश्वास हो, सार्थक सिद्ध हो सकती है। इन दो अनुच्छेदों की अन्त:स्थापना के पश्चात्, अधिनियम बनाए गए हैं जिनके अन्तर्गत न्याय प्रदान करने के लिए अधिकरणों का गठन किया गया है। पर्याप्त समय व्यतीत हो चुका है और इन कुछ विगत वर्षों में इस स्थिति का अध्ययन करने के लिए पर्याप्त अनुभव प्राप्त हुए हैं कि क्या इन अधिकरणों के गठन से वे उद्देश्य और प्रयोजन प्राप्त हुए हैं जिनके कारण इनका गठन किया गया था। अन्य अधिकरणों के कार्यकरण के बारे में भी शिकायतें सुनी गयी हैं और *अब समय आ गया है कि भारत का विधि आयोग जैसा निकाय इन अधिकरणों के कार्यकरण में सुधार लाने के लिए उपायों का सुझाव देने की दृष्टि से इस विषय का विस्तृत अध्ययन करे। आयोग विभिन्न कानूनों में परिवर्तन के सुझाव दे सकता है तथा एक ऐसी आदर्श पद्धति विकसित कर सकता है जिसके आधार पर और अधिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के विचार से अधिकरणों का गठन और पुनर्गठन किया जा सके। अधिकरणों की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की दृष्टि से विभिन्न अधिनियमितओं के अन्तर्गत उनके गठन के बारे में विधि आयोग द्वारा गहन और व्यापक अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है ताकि इन अधिकरणों में जनता का विश्वास बढ़ सके और उनके निष्पादन की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। हम सिफारिश करते हैं कि भारत का विधि आयोग प्राथमिकता के आधार पर ऐसा अध्ययन करे।* न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा इस निर्णय की एक प्रति तुरन्त कार्यवाही करने हेतु आयोग के सदस्य-सचिव को भेजी जाएगी।"

1.2 न्यायमूर्ति के. रामास्वामी ने भी, जिन्होंने उक्त निर्णय में अपनी सहमति व्यक्त करते हुए अपना पृथक निर्णय दिया, ऐसी ही टिप्पणियां की हैं। न्यायमूर्ति ने टिप्पणी की है—

"इस मामले से विमुक्त होते हुए न्यायिक समीक्षा के लिए विकसित किए गए वैकल्पिक तंत्र की निष्प्रभाविता पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करना आवश्यक हो जाता है। *न्यायिक समीक्षा और उपचार नागरिकों के मूल अधिकार हैं।* अधिकरणों की न्याय व्यवस्था से बहुत कुछ अपेक्षित है। हमें सदस्यों अथवा वाइस चेयरमैन (गैर न्यायधीश) की योग्यता में कोई संदेह नहीं है जो अपनी नियमित सेवा में विशेषज्ञ हो सकते हैं, परन्तु न्यायिक निर्णय एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो अधिवक्ता न्यायधीशों द्वारा कुशलतापूर्वक पूरी की जा सकती है। अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय में अपील करना महंगा भी है और निषेधात्मक भी और मुकदमा लड़ने वालों के लिए न्यायालय की दूरी निरन्तर रूप में एक बाधा बनी हुई है जिनके लिए इस न्यायालय तक पहुंच पाना संभव नहीं है। *विधि संबंधी प्रश्नों पर अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध अपने अपने उच्च न्यायालयों के दो न्यायधीशों की बैंच के समक्ष अपील करने से उन लोगों की न्याय न पाने की उग्र होती भावना शान्त हो जाएगी जिनके लिए उच्चतम न्यायालय तक पहुंच पाना संभव नहीं है।* इसी प्रकार अधिकरणों "बार" के सदस्यों को नियुक्त करने की आवश्यकता है, साथ ही अधिकरणों की कार्य प्रणाली पर नए रूप में ध्यान देने और उसकी निरन्तर निगरानी रखने की आवश्यकता है। *भारत का विधि आयोग जैसा एक विशेषज्ञ निकाय आयकर अपील अधिकरण की भांति सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण को विधि तथा न्याय विभाग के नियंत्रण के अधीन लाने की वांछनीयता सहित इस विषय का गहन अध्ययन करेगा और भारत सरकार से तत्काल उपयुक्त सिफारिश करेगा* जो बाधाओं और कठिनाईयों को दूर करने के लिए और न्यायिक समीक्षा को प्रभावशाली, मितव्ययी और संतोषप्रद बनाने के लिए अधिकरणों को प्रभावी और कुशल उपकरण बनाने के लिए एक उपयुक्त विधान बनाकर उपचारात्मक उपाय करेगी।"

1.3 तद्नुसार, भारत के विधि आयोग ने मामले पर विचार करना आरम्भ किया, एक प्रश्नावली और एक संशोधित अतिरिक्त प्रश्नावली तैयार की (क्रमश: अनुबंध एक और दो) और सभी संबंधित व्यक्तियों, विभागों और प्राधिकरणों के विचार जानने के लिए इसे परिचालित किया।

प्रतिक्रिया पर्याप्त रूप से उत्साहजनक रही है। इस पर विभिन्न स्रोतों से विचार, सुझाव और टिप्पणियां प्राप्त हुई हैं जिन पर आयोग ने विचार किया है।

1.4 आयोग ने अपनी रिपोर्ट वर्ष 1996 में ही प्रस्तुत कर दी होती परन्तु जब आयोग को यह बताया गया कि प्रशासनिक अधिकरणों के कार्यकरण से संबंधित मामला और भारत के संविधान के अनुच्छेद 323-क और 323-ख की विधिमान्यता से संबंधित मामला एक बड़ी संविधान पीठ के विचारार्थ भेजा गया है और यह अभी विचाराधीन है। उक्त जानकारी को ध्यान में रखते हुए, आयोग ने मामले में उच्चतम न्यायालय के विचारों की प्रतीक्षा करते हुए आगे कार्यवाही करना रोक दिया है। उच्चतम न्यायालय की सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने इस बीच एल चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ (1977) 3 सु. को. 261 मामले में अपना निर्णय दे दिया है। न्यायालय का सर्वसम्मत मत मुख्य न्यायाधीश ए. एम. अहमदी द्वारा घोषित किया गया। निर्णय की मुख्य बातें परवर्ती अध्यायों में दी गयी हैं।

1.5 इस अध्ययन के प्रयोजन से उक्त निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा सुसंगत है और इस रिपोर्ट को तैयार करते समय उसे ध्यान में रखा गया है।

1.6 जब भारत के विधि आयोग ने आर. के जैन बनाम भारत संघ मामले की टिप्पणियों के अनुसरण में अध्ययन आरम्भ किया तब उससे केवल निम्नलिखित तीन प्रकार के अधिकरणों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा :—

(एक) संविधान के अनुच्छेद 323-क के अनुसरण में अधिनियम प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अन्तर्गत गठित प्रशासनिक अधिकरण

(दो) सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 129 के अन्तर्गत स्थापित सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण और सीमा शुल्क अधिनियम तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944, दोनों के अन्तर्गत आने वाले मामलों का निपटारा।

(तीन) आयकर अधिनियम, 1951 की धारा 252 के अन्तर्गत गठित आयकर अपील अधिकरण।

1.7 सभी संबद्ध परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारत के विधि आयोग का मत है कि इन तीनों प्रकार के अधिकरणों के कार्यकरण की पृथक पृथक जाँच करना उपयुक्त तथा सुविधाजनक रहेगा। वास्तव में ये तीन अधिकरण तीन भिन्न-भिन्न अधिनियमितियों के अन्तर्गत गठित किए गए हैं। अपनी शक्तियों, स्तर, महत्व, नियुक्ति पद्धति तथा अन्य सेवाशर्तों के मामले में भी ये भिन्न-भिन्न हैं।

देश में प्रशासनिक अधिकरणों के कार्यकरण के संबंध में अध्ययन के प्रमुख विषय :—

आयोग ने देश में प्रशासनिक अधिकरणों के कार्यकरण से संबंधित निम्नलिखित प्रमुख विषयों तक ही अपना अध्ययन क्षेत्र सीमित रखने का निर्णय किया है :—

(एक) अधिकरणों के सदस्यों की नियुक्ति, उनकी पात्रता, नियुक्ति पद्धति आदि।

(दो) अधिकरण की संरचना।

(तीन) प्रशासनिक अधिकरणों की शक्तियों और प्रक्रियाओं को मानवीकृत करने की आवश्यकता।

(चार) अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने वाले पक्षों को मूल प्रक्रियात्मक अधिकारों और सुरक्षोपायों और डाक के माध्यम से न्याय मांगने जैसे सहायक विषयों की गारंटी देना।

(पाँच) प्रशासनिक विधि का, विशेषकर न्यायिक पुनरीक्षा तथा अपील के संबंध में, सरलीकरण; और

(छः) जब किसी अधिकरण से न्यायिक रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जाती है तब अपेक्षित परिमाण में उसे स्वतंत्रता सुनिश्चित करना।

विधि आयोग को निर्देश विशेषतया उन अभिकरणों के कार्यकरण पर विचार करने के लिए दिया जाता है जिन्हें ''प्रशासनिक अभिकरणों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इन अभिकरणों को सरकार विधि द्वारा ऐसे निर्णय करने के लिए प्राधिकृत करती है जो लोगों के समानता, सम्पत्ति तथा आर्थिक और सामाजिक हकदारियों को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे और भी बहुत से निर्णयकारी निकाय है जो सिद्धांत रूप में ऐसे अधिकरण नहीं है जिनसे लोग प्रभावित होते हैं और जो किसी समुदाय के संसाधनों के बारे में निर्णय करते हैं। आयोग यह महसूस करता है कि प्रशासनिक न्याय प्रणाली में इस प्रकार के निर्णयकारी निकायों की भूमिका पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

आयोग ने एल. चन्द्रकुमार के मामले (1997) 3 सु. को. 261 पैरा 88 में उद्धृत मालीमथ समिति के उद्धरणों का संदर्भ दिया है जहां ऐसे बहुत से कारण बताये गए हैं जो यह दर्शाते हैं कि देश में ऐसे बहुत से अधिकरण हैं जिन्होंने जनता में विश्वास पैदा नहीं किया है।

(एक) सर्वप्रथम दक्षता, निष्पक्षता और न्यायिक दृष्टिकोण का अभाव

(दो) दूसरा कारण है उनका गठन, उनमें नियुक्त व्यक्तियों की शक्ति और नियुक्ति पद्धति, घटिया स्तर और कार्यकरण प्रणाली।

(तीन) उनकी वास्तविक संरचना, कार्यकाल की अनिश्चितता, असंतोषप्रद सेवाशर्तें, प्रशासनिक मामलों में कार्यकारी अधिकारियों के अधीन होना और न्यायिक कार्यकरण में राजनैतिक हस्तक्षेप जैसे कारणों से विद्वत व्यक्ति पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति नहीं चाहते।

उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की :

''89—यह प्रत्यक्ष और सर्वविदित तथ्य है कि बहुत से अधिकरणों ने अपेक्षा के अनुसार कार्य नहीं किया है।

तथापि, उन्हें सौंपी गयी न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति के उपयोग में उनका संवैधानिक जाँच से खरे उतरना सुनिश्चित करने के लिए उनका स्तर उठाने हेतु कड़े उपाय करने होंगे''

(बल दिया गया)

इन कारणों के अतिरिक्त, हमारा विचार है कि निम्नलिखित विषयों की ओर भी ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है :—

(क) विलम्ब प्रशिक्षण की कमी है और अनौचित्यता का लोक बोध और यह भावना कि बहुत से मामलों में अननुमेय विचारणाओं की भूमिका रहती है।

(ख) कार्यकुशलता संबंधी विषय और न्याय प्रदान करने वाली प्रशासनिक प्रणाली में व्यक्तियों और सरकार को आने वाली लागत मूल चिन्ता का विषय है। कुछ मामलों में, विशेषकर जहाँ व्यक्तियों के अधिकार और हक अन्तर्ग्रस्त है, प्रणाली में विलम्ब का परिणाम अन्याय हो सकता है और न्याय प्राप्त करने की प्रणाली की विश्वसनीयता कम हो सकती है।

(ग) सरकार को निर्णय को खर्चीला होने से रोकने के सुधारात्मक प्रयास करने चाहिए।

(घ) लोगों के लिए उपयुक्त प्रक्रिया के प्रश्न को समझ पाना कठिन है, विशेषकर, जहाँ अपील तथा न्यायिक पुनरीक्षा के मामले अन्तर्ग्रस्त हों।

(ङ) निर्णय करने में कतिपय अधिकरणों द्वारा प्रयुक्त प्रक्रियाओं के प्रति एक तदर्थ दृष्टिकोण अपनाया गया प्रतीत होता है। कुछ अभिकरण अपनी प्रक्रियाएं बनाती है, कुछ कतिपय विनियमों से शासित होती है जबकि कुछ अभिकरणों में ऐसा कुछ भी नहीं है।

कुछ उद्देश्य जो प्रशासनिक न्याय प्रणाली द्वारा प्राप्त किए जाने चाहिए और निर्णयकारी प्रक्रियाओं में भी प्रकट होने चाहिए, इस प्रकार है : प्रतिनिधित्व होना, सुगमता/पारदर्शिता, विशेषज्ञता, उत्तरदायित्व और कार्यकुशलता।

एक प्रशासनिक प्रणाली द्वारा इन उद्देश्यों की प्राप्ति से एक ऐसा वातावरण बनेगा जिसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त प्रभावी हो सकते हैं और वास्तव में, इनमें से बहुत से उद्देश्य प्राकृतिक न्याय अथवा औचित्य के अभिन्न अंग है।

अध्याय-दो

2.1 प्रशासनिक विधि का प्रयोजन :—

राज्य विविध रूपों में अपने नागरिकों के जीवन को विनियमित करता है। सामान्य नागरिक को प्रत्येक मोड़ पर सरकार का सामना करना पड़ता है, विशेषकर जब वह किसी कारोबार में लगा हो, किसी सम्पत्ति का स्वामी हो, अथवा सरकार या उसके किसी अभिकरण में नियुक्त हो। अत: यह एक कुशल लोक प्रशासन की आवश्यकता है कि एक ओर राज्य को हितों और दूसरी ओर उसके नागरिकों के हितों के मध्य एक उचित संतुलन रखा जाए क्योंकि प्रशासनिक विधि में इसका अत्यन्त महत्व है जो जनता और नागरिकों की सरकारी शक्ति के दुरुपयोग से रक्षा करता है। उचित संतुलन का विचार लोक विधि के भी प्रशासनिक विधि के अस्तित्व के लिए न्यायोचित है। न्यायालय नागरिकों के हितों की रक्षा के लिए केवल आवश्यक और जो प्रशासनिक विधि के विज्ञान को ज्ञात सिद्धान्तों और अवधारणाओं की सीमा के अन्तर्गत ही हस्तक्षेप करते हैं। न्यायालय अपने पुनरीक्षात्मक अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए प्रशासनिक मामलों में, सरकार द्वारा गुणावगुणों के आधार पर ऐसे मामलों में कार्यवाही करने से पहले ही कुछ निश्चित नहीं करते।

(जैड एम नेडजारी और जे. ई. ट्राइस, इंगलिश एण्ड कान्टीनेंटल सिस्टम्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, अध्याय एक)

2.2 प्रशासनिक अधिकरणों के लाभ :—

ऐसे अधिकरणों के अन्य लाभों में से कुछ महत्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं :—

(एक) कम खर्चीलापन, जहां कम खर्चीला होना न्याय का एक अनिवार्य पहलु है (उदाहरण के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में आवेदन डाक द्वारा भी भेजे जा सकते हैं)।

(दो) शीघ्रता

(तीन) तकनीकी मामलों का विशेष ज्ञान अन्तर्ग्रस्त है।

(चार) सामान्य विधि संबंधी नीतियों और पूर्वोदाहरणों के सिद्धान्तों से उत्पन्न होने वाले अनावश्यक प्रतिबंधों के बिना समाज सुधार की नीतियों को क्रियान्वित करने की क्षमता।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि आवास, समाज सेवाएं, नगर आयोजना, कार्य की क्षमता, परिवहन नियंत्रण, व्यवसायिक और व्यापार अनुशासन तथा ऐसे ही अन्य विविध मामलों, नए स्तरमान बनाने के लिए अधिक तकनीकी अनुभव, अधिक लचीलेपन तथा समाज कल्याण पर सामान्य न्यायिक प्रक्रिया और परम्परागत मान्यताओं की तुलना में अधिक बल देने की आवश्यकता है।

[प्रिंसिपल ऑफ आस्ट्रेलियन एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, लेखक डी. जी. बेनजाफील्ड और एच. व्हिटमोर, पृष्ठ 332 (चतुर्थ संस्करण)]

अध्याय-तीन

भाग - एक

अन्य देशों में और भारत में प्रशासनिक उपचार

3.1 जब तक अन्य देशों में प्रशासनिक अधिकरणों की स्थिति पर ध्यान नहीं दिया जाता तब तक अधिकरणों के बारे में अध्ययन पूरा नहीं होगा। साथ ही, भारत में विगत में किए गए सुधारात्मक प्रयासों पर भी स्थिति के व्यापक परिदृश्य पर विचार करने की दृष्टि से उल्लेख करना आवश्यक होगा।

3.2 फ्रैंक्स समिति की रिपोर्ट और मंत्री की शक्ति संबंधी समिति (ब्रिटेन)

फ्रैंक्स समिति—

वर्ष 1955 में प्रशासनिक न्याय निर्णय की प्रक्रिया की जांच करने के लिए ब्रिटेन की संसद ने प्रशासनिक अधिकरण और जाँच के बारे में एक समिति स्थापित की जिसे सामान्यतया फ्रैंक्स समिति के नाम से जाना जाता है। इस समिति को स्थापित करने का आधार प्रशासनिक कार्यवाही के संदर्भ में नागरिक सुरक्षा की आवश्यकता सभी राजनैतिक दलों की चिन्ता अधिकांशत: क्रिचिल डाऊन अफेयर (क्रिचिल डाऊन इन्क्वायरी) ऑनंड 9176 (1954) द्वारा प्रेरित, थी।

समिति की सामान्य सिफारिशों में प्रथम अधिकरण द्वारा तथ्य, विधि तथा गुणावगुणों के आधार पर अपीलीय अधिकरण को (स्वयं मंत्री के अतिरिक्त) अपील किया जाना जहां प्रथम अधिकरण असाधारण रूप से सशक्त और सभी प्रकार योग्य है के अतिरिक्त सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त विधि संबंधी प्रश्न पर कोई अपील, कुछ अपवादों को छोड़कर, सामान्य न्यायालय में की जाएगी और ऐसी अपील सरल, सस्ती तथा शीघ्र निपटारे वाली होंगी। समिति ने यह भी सिफारिश की कि किसी भी विधि में ऐसी शब्दावली प्रयुक्त नहीं होनी चाहिए जिससे उत्प्रेषण (सर्टिरियोरी) प्रतिषेध (प्रोहिबिशन) और परमादेश (मैंडमस) रिट याचिकाओं द्वारा उपचार पाने का अधिकार क्षेत्र ही न रह जाता हो। एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिश यह प्रस्ताव था कि इंग्लैण्ड के लिए अधिकरणों संबंधी एक परिषद गठित की जाए (और स्काटलैण्ड के लिए एक पृथक परिषद गठित की जाए) जिसके सदस्य लार्ड चांसलर द्वारा नियुक्त किए जाऐ और वे उसके प्रति उत्तरदायी होंगे। यह परिषद यह सुझाव देगी कि अधिकरणों के गठन, संगठन तथा प्रक्रिया के बारे में समिति की अधिक विस्तृत सिफारिशों को विद्यमान अधिकरणों के लिए किस प्रकार लागू किया जाए और अधिकरणों को किस प्रकार नियमित पुनरीक्षाधीन रखा जाए। समिति किसी प्रस्तावित नए अधिकरण के गठन और प्रक्रिया के बारे में परामर्श देगी। (प्रिंसिपल्स ऑफ आस्ट्रेलियन एडमिनिस्ट्रेटिव ला, लेखक डी.जी. बेनजाफील्ड और एम व्हिटमोर, चतुर्थ संस्करण पृष्ठ 333—336)।

यहां इन दोनों रिपोर्टों के क्रियान्वयन के संबंध में डी.सी.एम. यार्डली की पुस्तक "प्रिंसिपिल्स ऑफ एडीमिनस्ट्रिेटिव लॉ, (1981) पृष्ठ 198—200 से संगत उद्धरण देना लाभप्रद होगा :—

"फ्रैंक्स की रिपोर्ट की दो प्रमुख विधायी उपलब्धियां अधिकारणों पर परिषद की स्थापना और विभिन्न अधिकरणों से सीधे डिवीजनल न्यायालय में अपील दायर करनी थी। परन्तु इसके प्रशासनिक अधिकरण तथा जाँच की समस्त प्रणाली पर अन्य कई महत्वपूर्ण प्रभाव भी हैं। समिति की पिचानवें विस्तृत सिफारिशों में से अधिकांश सिफारिशें तत्कालीन सरकार ने तुरन्त स्वीकार कर ली थी और शेष सिफारिशों में से बहुत सी सिफारिशों को बाद में पूर्णत: या आंशिक रूप में स्वीकार कर लिया गया था। कुछ शेष बची सिफारिशों को अन्त में रद्द कर दिया गया अथवा प्रभावी नहीं बनाया गया। परन्तु क्योंकि स्वीकार की गयी बहुत सी सिफारिशें सिद्धान्तों की अपेक्षा विवरण संबंधी मामलों से संबंधित थी इसलिए उन्हें विधान बनाए बिना ही क्रियान्वित करना संभव था। उदाहरण के लिए, सभी किराया अधिकरणों के चेयरमैन विधिक योग्यता रखते हों। इस सिफारिश को अधिकरण संबंधी प्राथमिक या द्वितीयिक विधान में परिवर्तन किए बिना ही व्यवहारिक रूप में प्रभावी बना दिया गया। इसके अतिरिक्त समिति द्वारा पारदर्शिता औचित्य तथा निष्पक्षता की आवश्यकताओं पर दिया गया बल सामान्यतया परवर्ती विधानों में परिलक्षित नहीं होता अपितु उन अधिकरणों के सामान्य दृष्टिकोण के परिवर्तन में दृष्टिगत होता है जिन्होंने पहले इन लक्षणों के पूर्ण तात्पर्य की सराहना नहीं की . . . . कानूनी उपकरण, जिनसे वर्ष 1946 से किराया अधिकरणों की प्रक्रिया शासित होती है, यद्यपि इसमें इस बीच कुछ संशोधन किए गए हैं और यह उपकरण अधिकरणों को उनके स्वविवेकानुसार प्राइवेट या पब्लिक रूप में बैठक की अनुमति प्रदान करता है। फ्रैंक्स समिति की रिपोर्ट से पूर्व किराया अधिकरणों के लिए प्राइवेट रूप में बैठक करना और प्रेस को अलग रखना एक आम बात थी परन्तु फ्रैंक्स समिति की रिपोर्ट आने के पश्चात किराया अधिकरणों के अध्यक्षों ने, जब गुप्त रूप से बैठक

करने के बाध्यकारी कारण न हो, सार्वजनिक बैठक के महत्व को समझा हो तदनुसार, जब तक उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार अन्य प्रकार से बैठक करने के लिए सहमत न किया जाए, अब ये अधिकरण सार्वजनिक रूप में ही बैठक करते हैं।

प्रशासनिक व्यवहार में परिवर्तन करके बहुत से अन्य सुधार भी किए गए हैं। इसमें बहुत से किसी विशिष्ट अधिकरण अथवा जाँच के प्रकारों की विस्तृत प्राक्रिया से संबंधित हैं और उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इनमें से तीन विशेषतया महत्वपूर्ण हैं :—

(क) अब अपीलीय अधिकरण कुछ चुने हुए निर्णयों के बाद के मामलो में अपने लिए तथा नए गठित अधिकरण के मार्ग-निर्देशन के लिए प्रथागत रूप में प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार किराया मूल्यांकन समितियों के निर्णय संबंधित पैनल के सभी सदस्यों और पैनल के अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी किराया अधिकारियों के लिए परिचालित किए जाते हैं। साथ ही और इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्पूर्ण, सामाजिक सुरक्षा अधिकारियों के निर्णय महारानी के स्टेशनरी कार्यालय द्वारा प्रकाशित कराए जाते हैं और सभी स्थानीय बीमा अधिकारियों, स्थानीय अधिकरणों के चेयरमैनों और कुछ चुने हुए ग्रंथालयों को भेजे जाते हैं। ये निर्णय, सामाजिक सुरक्षा क्षेत्र के अन्य अधिकरणों के लिए इतने बाध्यकारी पूर्वोदहारण नहीं है जितने कि उच्च न्यायालय के निर्णय । फिर भी स्थानीय बीमा अधिकारियों, स्थानीय अधिकरणों के लिए ये सामान्तर बाध्यकारी समझे जाते हैं ताकि सामाजिक सुरक्षा अधिक न्यायजन्य विधि का एक संगत निकाय बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त सेवानिवृत राष्ट्रीय बीमा आयुक्त, श्री डेसमंड नेलिगन ओ बी ई द्वारा संकलित आयुक्तों के निर्णयों का अधिकृत सारसंग्रह, स्टेशनरी कार्यालय द्वारा प्रकाशित पूर्वोदहारण का एक संगत निकाय स्थापित करने अत्यधिक सहायक रहा है। इस सारसंग्रह को नियमित खुले पृष्ठ जोड़कर अद्यतन रखा जाता है।

(ख) लगभग सभी अधिकरणों में विधिक अन्यावेदन की अनुमति है परन्तु यहां पक्षकार पर निर्भर करता है कि वह ऐसे अन्यावेदन का उपयोग करता है अथवा नहीं। फ्रैंक्स समिति ने सिफारिश की थी कि अधिक औपचारिक तथा अधिक मंहगें और अन्तिम अपीलीय अधिकरणों के लिए भी यह कानूनी सहायता योजना लागू की जाए। विधिक अन्यावेदन के अधिकार को सामान्यत: मान्यता प्राप्त है और कहीं-कहीं इसका प्रक्रिया नियमों में विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। फ्रैंक्स रिपोर्ट के पश्चात के वर्षों में कानूनी परामर्श योजना का उतरोत्तर विस्तार किया गया है जिससे कि अब यह किसी भी अधिकरण के समक्ष सुनवाई पूर्व कानूनी परामर्श की सुविधा उपलब्ध है।

परन्तु इस योजना को अभी तक सामान्यतया विधिक अन्यावेदन पर आने वाले व्यय के वहन हेतु लागू नहीं किया गया है। इसका कारण अधिकांशत: कि व्यय का भार सामान्य जन जीवन पर पड़ना हो सकता है। परन्तु इसके अन्य कारणों में संभावतया यह संदेह भी एक हो सकता है कि क्या न्यायाभिकता और जो अधिकांशत: प्रैक्टिस करने वाले अधिवक्ता ही होंगे जो सबसे छोटे अधिकरणों की सुनवाई में उपस्थित होंगे, मामले में सामने आने वाली विशिष्ट विधि कारक पर्याप्त ज्ञान होगा। सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में अधिकरणों में कार्यवाही में निश्चित रूप से, एक स्थानीय अधिकरण के चेयरमैन के रूप में वर्तमान लेखक के अनुभव का यह सुझाव है, मजदूर संघों के अधिकारी अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ताओं की तुलना में सामान्यत: अधिक प्रभावी अधिवक्ता सिद्ध होते हैं। इसलिए पक्षकारों को, लगभग सभी अधिकरणों की कार्यवाहीयों में, अपने प्रतिनिधित्व के लिए अपनी अधिवक्ता रखने की अनुमति है, परन्तु ऐसा वे सामान्यत: अपने खर्चे पर ही कर सकते है।

(ग) अधिकरणों के चेयरमैनों को सामान्यत: कानून प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए और लार्ड चांसलर द्वारा, और स्काटलैण्ड के मामले लार्ड एडवोकेट द्वारा, नियुक्त व्यक्तियों के पैनल से उपयुक्त मंत्री द्वारा चुना जाना चाहिए। इससे यह सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है कि किसी अधिकरण की कार्यवाही का अध्यक्षपीठ मामले की सुनवाई से पूर्व सभी पक्षकारों को सभी तथ्यों की पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराने के लिए योग्य व्यक्ति है और सुनवाई में किसी भी अन्तर्ग्रस्त निक्षण में सभी पक्षकारो को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करेगा। इसके अतिरिक्त चेयरमैन की विधिक अर्हता यह सुनिश्चित करने में सहायक होनी चाहिए कि चेयरमैन इस बात का ध्यान रखेगा कि नैसर्गिक न्याय के नियमों का सुनावाई में पूरी तरह से अनुसरण किया जा रहा है और यह कि वह पक्षकारों से ऐसे प्रश्न पूछेगा जिनसे तथ्य अथवा संगत तर्क सामने आये जो सामान्य रूप स सुनवाई में सामने नहीं आए है। चेयरमैन का यह कृत्य सुनवाई में किसी पक्षकार के वास्तविक विधिक प्रतिनिधित्व की कमी को पूरा करता है।

.... मंत्री की शक्तियों पर डफमोर-स्काट कमेटी की रिपोर्ट का समग्र प्रभाव प्रत्यायोजित विधान के पहले भय और आशंकाओं को दूर करना था परन्तु इस प्रभाव की सराहना करने में कई वर्ष लग गए और समिति की विस्तृत सिफारिशों पर संसद द्वारा कार्यवाही किए जाने में दशाब्दियां व्यतीत हो गयी। फ्रैंक्स रिपोर्ट का प्रभाव अपेक्षाकृत त्वरित या प्रथम अधिकरण तथा जांच अधिनिमय को रायल अनुमति रिपोर्ट के प्रकाशन के एक वर्ष पश्चात प्राप्त हुई और वास्तव में बहुत

से प्रशासनिक परिवर्तनों की, जिनकी समिति ने सिफारिश की थी, अभ्यास चल रहा था। विचारधारा पर इस समग्र प्रभाव और भी त्वरित और जब 1959 में अधिकरण परिषद ने अपना कार्य करना आरम्भ किया तब तक सामान्य रूप से यह विश्वास हो गया था कि दोषों को दूर किया जा रहा था .... "

समिति द्वारा की गयी मौलिक सिफारिशों और विधान बनाकर किए गए सुधारों के बारे में एच.डब्ल्यू.आर. वादे की पुस्तक "एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ" के संबंधित पैरा, पृष्ट 915—920 से उद्धरण देना अनिवार्य हो जाता है—

वर्ष 1958 के सुधार

अधिकरण तथा जांच अधिनिमय, 1958 (ब्रिटेन) ने, विस्तार में कुछ परिवर्तनों के साथ, फ्रैंक्स समिति रिपोर्ट की नीतियों को क्रियान्वित किया। यह लघु अधिनियम और इससे समग्र चित्र प्रस्तुत नहीं होता था इस कारणवश प्रशासनिक विनियमों तथा व्यवहार में परिवर्तन करके महत्वपूर्ण सुधार किए गए। अब इसका स्थान प्रथमत: अधिकरण तथा जाँच अधिनियम, 1971 ने और इसके पश्चात् अधिकरण तथा जांच अधिनियम, 1972 द्वारा ले लिया गया। ये दोनों ही समेकित अधिनियम है जिनमें सारभूत कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

1958 के अधिनियम में अधिकरण संबंधी परिषद् का प्रावधान था। इसमें अधिकतम सदस्य संख्या 16 निर्धारित की गई थी परन्तु इसमें परिषद् की स्काटिश कमेटी का भी विशेष प्रावधान था जिसमें कुछ सदस्य ऐसे हो सकते थे जो परिषद् के सदस्य ही नहीं थे। परिषद् पूर्णतया एक परामर्शदात्री निकाय के रूप में विकसित हुई जिसे अधिकरण के सदस्य नियुक्त करने का अधिकार नहीं था। इसके पर्यवेक्षणाधीन अधिकरण एक अनुसूची में सूचीबद्ध किए गए हैं जिनमें से अधिकांश समिति द्वारा विचारित हैं। यह संभवतया ठीक ही था कि एक ऐसे निकाय को, जिसका आशय निगरानी रखना था और जो मंत्रालयी नियंत्रण से मुक्त था, कार्यकारी कृत्य न सौंपे जाएं, इसकी परिकल्पना में आपत्ति उठाना था उस पर कार्यवाही करना नहीं। अत: यह अपील न्यायालय अथवा फ्रांस और इटली की पद्धति पर राज्य परिषद् नहीं थी। परन्तु इसे सूचीबद्ध अधिकरणों के गठन और कार्यकरण की पुनरीक्षा करना था तथा सरकार द्वारा किसी अन्य अधिकरण के बारे में निर्देशित प्रश्नों की रिपोर्ट करनी होती थी। व्यवहार में, यह व्यक्तियों से शिकायतें प्राप्त करती है और साक्षियों से प्रमाण आमंत्रित करती है। सरकारी विभाग आने सामान्य कार्यो के दौरान इससे बार-बार परामर्श भी करते हैं। उसकी वार्षिक रिपोर्ट संसद में अवश्य प्रस्तुत की जानी चाहिए। इसे सूचीबद्ध अधिकरणों की सदस्यता के बारे में सामान्य सिफारिश करने की विशेष शक्ति प्राप्त है और कोई प्रक्रियात्मक नियम बनाने से पूर्व उससे परामर्श अवश्य किया जाना चाहिए। परिषद् के कार्यों का कुछ विशिष्ट विवरण नीचे दिया गया है।

जैसी कि फ्रैंक्स समिति ने सिफारिश की थी कि अधिकरण परिषद् में कुछ सदस्य अधिवक्ता होते हैं और कुछ सदस्य सामान्य, सामान्य सदस्यों का बहुमत होता है। इस बहुमत का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि परिषद् के मार्ग दर्शी सिद्धांत सामान्य प्राणी की न्याय भावना तथा निष्पक्षता के अनुरूप है और जहां तक संभव हो विधिक तकनीकी से स्वतंत्र है। सदस्यों को औद्योगिक, वाणिज्यिक और मजदूर संघों के कार्यों का व्यापक अनुभव होता है तथा वे विशिष्ट सेवा-निवृत सिविल अधिकरी होने के नाते प्रशासनिक रूप में अनुभवी होते हैं। इस प्रकार की संरचना में लाभ और हानियां दोनों ही विद्यमान हैं। यद्यपि परिषद् के अधिकांश कार्य जैसे संसद में विधायकों तथा प्रक्रियात्मक विनियमों की जांच करने के लिए अधिवक्ताओं की सहायता की आवश्यकता है फिर भी स्थापित विधि न्यायालयों की प्रक्रियाओं का अनुकरण करने की अपेक्षा, उसकी नीति ऐसे मानकों का विकास करने और अनुरक्षण रखने की है जो जनता अधिकरणों से चाहती है। परन्तु वास्तव में सारभूत न्याय के तत्व दोनों प्रणालियों में अधिकांशत: एक जैसे ही है।

1958 के अधिनियम द्वारा किए गए अन्य सुधार

अधिकरण तथा जांच अधिनियम, 1958 में निम्नलिखित प्रावधान भी किए गए—

1. किराया अधिकरणों तथा राष्ट्रीय बीमा, औद्योगिक क्षति, राष्ट्रीय सहायता और राष्ट्रीय सेवाओं से संबंधित अधिकरणों के चेयरमैन, उनके मंत्रालयों द्वारा लार्ड चांसलर द्वारा नामनिर्देशित पैनल से चुने जाएंगे।

2. सूचीबद्ध अधिकरणों में से किसी की भी सदस्यता अथवा उससे सम्बद्ध पैलन की सदस्यता केवल लार्ड चांसलर की अनुमति से ही समाप्त की जा सकेगी।

3. सूचीबद्ध अधिकरणों के लिए प्रक्रियात्मक नियम अथवा विनियम अधिकरण परिषद् के परामर्श के बिना नहीं अपनाए जा सकेंगे।

4. किराया अधिकरण तथा शिशुओं, रोजगार, स्कूलों, नर्सों तथा खानों से संबंधित अधिकरणों सहित बहुत से विशिष्ट अधिकरणों के मामले में विधि के किसी प्रश्न पर उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया गया है। बहुत से अन्य मामलों में यह अधिकार पहले ही विद्यमान हैं .... ।

5. मंत्रालयी आदेश द्वारा अन्य अधिकरणों को भी अधिनियम के अधिकार क्षेत्र में लाया जा सकता है। क्योंकि संसद तेजी से नए अधिकरण बनाती रहती है इसलिए अनुसूची में मस्तिष्क स्वास्थ्य पुनरीक्षा अधिकरण, दावं शुल्क अपील अधिकरण, औद्योगिक

अधिकरण, किराया निर्धारण समितियों, अप्रवासी अधिकरण, वैट अधिकरण, स्कूल नियतन अपील समितियां, आंकड़े संरक्षण अधिकरण और वित्तीय सेवाएं अधिकरण जैसे अधिकरणों सहित बहुत से अधिकरणों के नाम और जोड़े गए हैं।

6. कतिपय उपचारों (सर्टिओररी और मैनडेमस रिट याचिका) के माध्यम से न्यायिक नियंत्रण में सुरक्षित रखा गया। इस बारे में चर्चा अन्यत्र की गई है।

7. अधिनियम किसी भी सूचीबद्ध अधिकरण के तर्कसंगत निर्णय को विधिक अधिकार प्रदान करता है बशर्ते कि निर्णय देते समय या इससे पूर्व अथवा निर्णय की अधिसूचना से पूर्व इसके लिए अनुरोध किया गया हो। इसकी चर्चा नीचे की गई है।

8. अधिनियम के अधीन उत्तरदायी मंत्री और जिन्हें अधिकरण परिषद् को रिपोर्ट देनी थी, लार्ड चांसलर तथा सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर स्कॉटलैण्ड थे (1973 में इस प्रयोजन से उनके स्थान पर लार्ड एडवोकेट को लिया गया)।

यह अधिनियम कुछ विषयों, समितियों की सिफारिशों के अनुरूप नहीं था, उदाहरण के लिए चेयरमैन तथा अधिकरणों के सदस्यों की नियुक्ति संबंधी मामलों में। सम्भवतया तथ्यों तथा गुण-दोषों के बारे में अपील का प्रावधान न कर पाना एक महत्वपूर्ण भिन्नता थी। समिति ने किसी तथ्य, विधि तथा गणावगुण के बारे में अपील के अधिकार की सिफारिश की थी परन्तु अधिनियम में केवल विधि संबंधी प्रश्न पर अपील करने के अधिकार का प्रावधान था। इस प्रकार समिति का यह प्रस्ताव कि किराया अधिकरणों से काउंटी न्यायालय में अपील करने का अधिकार होना चाहिए, क्रियान्वित नहीं किया गया और किराया अधिनियम, 1965 द्वारा गठित किराया निर्धारण समितियों से किसी विधि के प्रश्न के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार की अपील का अधिकार नहीं दिया गया। तथापि क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्यों की स्वतंत्र रूप से पुनरीक्षा की जा सकती थी।

अधिकरण परिषद् का कार्य

यद्यपि परिषद को अधिकरणों के गठन और उन्हें प्रभावित करने वाले संसदीय विधेयकों के बारे में परामर्श देने का कोई अधिकार नहीं है, परन्तु जैसा कि फ्रैंक्स समिति ने अपेक्षा की थी, व्यवहारिक रूप में परिषद से परामर्श लिया जाता है। परिषद् उसी प्रकार विधेयकों पर अपनी टिप्पणयां देती है जैसाकि प्रक्रियात्मक नियमों के बारे में। यह विशेष रूप से नए अधिकरणों के प्रवधानों का प्ररूप तैयार करने में विभागों को सहायता देने का प्रयास करती है। इस प्रकार परिषद् ने किसी लाईसेंसधारी का पक्ष प्रस्तुत करने, जिसका लाईसेंस रद्द करने के लिए कहा गया है, सांविधिक अधिकार प्राप्त कर लिया है।

असंतुष्ट पक्षों से परिषद को प्राप्त हुई विभिन्न शिकायतों की उसने जांच की है और कुछ मामलों में तो अधिकरणों की प्रक्रियाओं में सुधार भी किए है। शिकायतों पर कार्यवाही करके तथा अधिकरणों में सुनवाई में उसके सदस्यों के भाग लेने के परिणामस्वरूप परिषद् ने अधिकरणों के लिए आवासन सुविधा भी प्राप्त कर ली है। इस प्रकार अधिकरणों के कार्यक्षेत्र में और जांच कार्य में भी एक प्रकार से ओम्बड्समैन का कार्य करती है। यद्यपि ऐसा वह इस प्रणाली में सुधार करने के विचार से करती है न कि व्यक्तिगत मामलों को निपटाने के विचार से। कुछ वर्षों से अधिकरणों के बारे में शिकायतें बहुत कम हो गई है। यह किसी सीमा तक वर्ष 1958 के सुधारों और बाद में सरकारी विभागों द्वारा क्रियान्वित किए गए सुधारों की सफलता है।

3.3 वर्ष 1958 के अधिनियम के स्थान पर अधिकारण और जांच अधिनियम, 1992 (ब्रिटेन) प्रतिस्थापित किया गया है। इस अधिनियम की धारा 1-4 अधिकरण परिषद और उनके कार्यों से संबंधित है। धारा एक में परिषद के कार्यों का प्रावधान है और इसमें अन्य बातों के साथ-साथ अधिनियम की अनुसूची एक में निर्दिष्ट अधिकरणों के गठन और उनके कार्यकरण को पुनरीक्षाधीन रखने और समय-समय पर उनके गठन और कार्यकरण पर रिर्पोर्ट देने, सामान्य विधि न्यायालय के अतिरिक्त अधिकरणों के बारे में परिषद् को संदर्भित विशिष्ट मामलों पर विचार करना तथा उन पर अपनी रिपोर्ट देना, चाहे अधिनियम की अनुसूची एक में इसका प्रावधान हो अथवा नहीं।

धारा 2 में परिषद् के गठन का प्रावधान है और धारा 4 में परिषद् के रिपोर्ट देने की प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

धारा 5 में परिकल्पना की गई है कि परिषद् अनुसूची एक में निर्दिष्ट किसी अधिकरण अथवा ऐसे किसी अधिकरण के प्रयोजन से बनाए गए पैनल के सदस्यों की नियुक्ति के बारे में सम्बद्ध मंत्री को अपनी सिफारिशें भेज सकती है। तथापि धारा 6 में कतिपय अधिकरणों के चेयरमैनों की नियुक्ति प्रणाली की प्रक्रिया की परिकल्पना की गई है।

अधिनियम की अनुसूची एक में निर्दिष्ट किसी अधिकरण के लिए प्रक्रिया नियम बनाने के उद्देश्य से अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत परिषद से परामर्श करना होगा।

धारा 11 में कतिपय अधिकरणों की अपीलें शामिल होती है। उपधारा (1) के अन्तर्गत यदि कोई पक्षकार किसी विशिष्ट अधिकरण के चल रही कार्यवाही से अधिकरण के निर्णय में विधि संबंधी किसी प्रश्न पर असंतुष्ट है तो वह न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार अधिकरण से उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है अथवा अधिकरण से मामले पर उच्च न्यायालय के विचार जानने के लिए मामले को उच्च न्यायालय में भेजने के लिए कह सकेगा। उपधारा 3 के अन्तर्गत, सभी अथवा किसी अधिकरण के संबंध में बनाए गए न्यायालय के नियमों में किसी अधिकरण

में चल रही कार्यवाही के दौरान अधिकरण को मामले को निर्णय के लिए उच्च न्यायालय में भेजने के लिए प्राधिकृत कर सकेगी और कार्यवाही में उठने वाले विधि संबंधी किसी प्रश्न पर और उच्च न्यायालय का निर्णय, न्यायालय का निर्णय समझा जाएगा। उपधारा (5) में यह निर्दिष्ट किया गया है कि इस धारा के अन्तर्गत अपील न्यायालय में अपील केवल उच्च न्यायालय अथवा अपीलीय न्यायालय की अनुमति प्राप्त होने पर की जा सकेगी।

3.4 न्याय समिति (कमेटी आफ जस्टिस) की रिपोर्ट :

ब्रिटेन में प्रशासनिक विधि की सभी पुनरिक्षाओं में अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय छः विषय अपनाए है। (रिपोर्ट का पैरा 1.11 से 1.17) यह इस प्रकार है:—

(क) शिकायतों को रोकने की आवश्यकता ;

(ख) निर्णय करने में पारदर्शिता की आवश्यकता;

(ग) उपचार तक सरलता से पहुँच पाना;

(घ) उपचारों की पर्याप्तता;

(ड़) विधि को अद्यतन रखने की आवश्यकता; और

(च) सार्वजनिक सूचना की आवश्यकता।

क. शिकायतें रोकने की आवश्यकता:—

रिर्पोट बल देती है कि शिकायतों के समाधानों के अवसरों को न्यूनतम स्तर पर लाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है आयोजना के क्षेत्र के संबंध में इसमें सिफारिश की गई है कि अपील प्रक्रियाओं का प्रभावी होना अनिवार्य है क्योंकि अपीलकर्ताओं और शिकायतकर्ताओं को यह महसूस होना चाहिए कि उनके मामले पर निष्पक्ष रूप में विचार हुआ है।

ख. निर्णय करने में पारदर्शिता की आवश्यकता :—

निर्णय स्पष्ट और बुद्धिमत्तापूर्ण होने चाहिए। मांगे जाने पर प्रकाशकों को अपने निर्णयों तथा उन तथ्यों के कारण बताने होंगे जिनके आधार पर वे निर्णय लिए गये हैं। रिपोर्ट में बताया गया है कि ऐसे नियम से उपर्युक्त (क) का शिकायतों को दूर रखने का उद्देश्य भी पूरा हो जाएगा। इसका कारण यह है कि निष्पक्ष और न्यायोचित निर्णय से निरंकुश अथवा गैरतर्कसंगत अथवा पक्षपातपूर्ण निर्णय के अवसर नहीं आयेंगे।

ग. उपचारों का सरलता से उपलब्ध होना :—

रिपोर्ट में ऐसी कृत्रिम शक्तियों को समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है जो कि किसी व्यक्ति के आवश्यक उपचार प्राप्त करने में बाधक हों। इस अन्तर्निहित सिद्धान्त पर आधारित रिर्पोट आदेश संख्या 53, अर्थात् न्यायिक पुनरीक्षा के लिए आवेदनकर्ता को न्यायालय की अनुमति प्राप्त करनी होगी, के विरुद्ध है। इसी प्रकार यह उस नियम के भी विरुद्ध था। जिसमें यह अपेक्षित है कि सार्वजनिक अधिकार घोषित करने अथवा लागू करने से पूर्व महान्यायवादी की औपचारिक आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

ङ उपचार की पर्याप्तता :—

रिपोर्ट में यह टिप्पणी की गई है कि यदि वे उपचार अपर्याप्त है जो न्यायाधीश प्रदान करता है तब परिष्कृत प्रकिया का भी कोई लाभ नहीं हैं। इस संबंध में रिपोर्ट में कहा गया है कि ओम्बड्समैन के क्षेत्र में स्थानीय ओम्बड्समैन द्वारा सिफारिश किए गए उपचारों को पूरा करना अनिवार्य है।

ड़. विधि को अद्यतन बनाए रखने की आवश्यकता :—

रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि कठोरता तथा अवरोधों का हावी हो जाने का खतरा है। इसमें सिफरिश की गई है कि यह सुनिश्चत करने के लिए कि सभी संस्थान शीघ्र तथा कुशलतापूर्वक अपना कार्य सम्पन्न करें इसलिए उन सभी पर सावधानी पूर्वक निगरानी रखने की आवश्यकता हैं। ऐसा अभिमत भी व्यक्त किया गया है कि सरकारी नियंत्रण से मुक्त एक ऐसे स्थायी निकाय की आवश्यकता है जो वास्तविक विधि तथा ओम्बड्समैन के अधिकार क्षेत्र में विचाराधीन विधानों पर अपनी टिप्पणी दे सके, सुधारों के प्रस्ताव कर सकें तथा न्यायिक पुनरीक्षा की खामियों की ओर ध्यान आकर्षित कर सकें। यह प्रस्ताव किया गया है कि ऐसा निकाय विधि द्वारा ही बनाया जा सकता है अथवा स्थायी रायल कमीशन के रूप में स्थापित किया जा सकता है और अधिकरणों संबंधी परिषद का अस्तित्व बना रहेगा तथा वह नए कमीशन के साथ मिलकर कार्य करेगी। रिपोर्ट में जिस प्रस्तावित निकाय का सुझाव दिया गया है वह ''प्रशासनिक पुनरीक्षा आयोग'' के नाम से जाना जाता है (उक्त रिपोर्ट का पृष्ट 75)।

च. सार्वजनिक सूचना की आवश्यकता और सुगमता :—

रिपोर्ट में इस बात का भी समर्थन किया गया है कि जनता को कष्ट निवारण के अवसरों के बारे में पर्याप्त जानकारी दी जानी चाहिए। जिन आधारों पर न्यायिक पुनरीक्षा की मांग की जा सके विधि संहिता में उनका स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए (यद्यपि ऐसे रूप में जिससे विधि के विकास का अवसर निरन्तर बना रहे)।

3.5 आस्ट्रेलिया में न्यायिक पुनरीक्षा :

सांविधिक विवरण जिनके आधार पर न्यायालय आस्ट्रेलिया में प्रशासनिक निर्णय को अपास्त कर सकती है, निम्नलिखित है :—

न्याय समिति की रिपोर्ट (पृष्ट 18) में आस्ट्रेलियायी प्रशासनिक निर्णय (न्यायिक पुनरीक्षा) अधिनियम, 1977 (1978 तथा 1980 में संशोधित) की धारा 5 (1) में अन्तर्विष्ट पुनरीक्षा आधार पर किए गए हैं जो संक्षेप में निम्नलिखित रूप में है :—

(क) नैसर्गिक न्याय के नियमों का हनन;

(ख) विधिक प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं का हनन;

(ग) क्षेत्राधिकार का अभाव;

(घ) सांविधिक प्राधिकार का अभाव;

(ङ) सांविधिक शक्ति का अनुचित प्रयोग;

(च) विधि में त्रुटी;

(छ) धोखाधड़ी से प्रेरित निर्णय;

(ज) साक्ष्य का न होना;

(झ) अन्यथा विधि के विपरीत निर्णय।

अधिनियम की धारा 5 (2) उपर्युक्त भाग (ङ) का यह उल्लेख करते हुए विस्तार करती है कि शक्ति के अनुचित प्रयोग का अर्थ निम्नलिखित के लिए निर्देश सहित यह समझा जाना चाहिए :—

(क) विसंगत विषय पर विचार करना;

(ख) संगत विषय पर विचार करने में असफल रहना;

(ग) गैर-सांविधिक प्रयोजन के लिए शक्ति का प्रयोग;

(घ) असद्‌भावपूर्ण कार्य के शक्ति का प्रयोग;

(ङ) किसी अन्य व्यक्ति के निर्देश पर कार्य करना;

(च) किसी विशिष्ट मामले के गुणावगुण पर ध्यान में रखे बिना नियम और नीति को कार्यरूप देना;

(छ) शक्ति का अयुक्तियुक्त प्रयोग;

(ज) अनिश्चित परिणाम देना; और

(झ) शक्ति का किसी ऐसे अन्य रूप में प्रयोग जिसे शक्ति का दुरूपयोग समझा जाय।

3.6 जैंड़. एम. नेजाती तथा ज.ई. ट्राइस ने अपनी "इंगलिश एण्ड कान्टीनेंटल सिस्टम्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ" नामक पुस्तक संस्करण 1978 अध्याय तीन में योरोपीय देशों में प्रशासनिक विधि प्रणाली पर निम्नलिखित रूप में दृष्टिपात किया है :—

फ्रैंच एडमिनिस्ट्रेट्रिव लॉ

फ्रांस में दो स्तरीय प्रशासनिक न्यायालय तंत्र है जिसका प्रधान "काऊन्सिल डी-एटाट" है। इस विशिष्ट अधिकरण में सावधानीपूर्वक चुने गए लगभग 150 विशेषज्ञ हैं और इसका उद्‌गम प्राचीन व्यवस्था में निहित है तथा यह एक विशिष्ट फ्रैंच संस्थान है। इसका कृत्य दुहरा है। पहला, प्रस्तुत किए जाने वाले प्रशासनिक विनियमों तथा साधारण विधियों के प्रभाव और विधिमान्यता के बारे में सरकार तथा कार्यपालिका को परामर्श देना और दूसरा राज्य तथा सार्वजनिक निकाय और किसी नागरिक के बीच उठने वाले विवाद पर वाद विभाग के माध्यम से निर्णय करना। निचले स्तर पर 24 प्रशासनिक अधिकरण हैं जो अपने क्षेत्र के सर्वप्रथम प्रशासनिक न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं।

प्रशासनिक न्यायालयों के समक्ष वाद :

फ्रांस में, किसी नागरिक तथा प्रशासनिक संदर्भ में राज्य के किसी अंग के बीच विवाद "काउन्सिल डी-एटाट" के अधिकार क्षेत्र में आता है।

3.7 जर्मन जनवादी गणतंत्र

जर्मन जनवादी गणतंत्र में प्रत्येक राज्य में स्थानीय स्तर पर पृथक-पृथक प्रशासनिक न्यायालय और अधिकरणों की व्यवस्था है और प्रत्येक राज्य में एक अपीलीय उच्च प्रशासनिक न्यायालय की व्यवस्था भी है। प्रशासनिक मामलों के लिए उच्चतम न्यायालय के रूप में परिसंघीय प्रशासनिक न्यायालय विद्यमान है। विशेष प्रशासनिक मामलों पर कार्यवाही करने के लिए सामाजिक सुरक्षा न्यायालय और राजवित्तीय न्यायालय जैसे पृथक न्याय तंत्र की व्यवस्था है।

3.8 बेल्जियम

उन्नीसवीं शताब्दि के दौरान बेल्जियम के सामान्य न्यायालयों ने एक अधिष्ठाई प्रशासनिक न्यायिक प्रणाली का विकास किया। फ्रांस में विकसति की गई प्रणाली से बहुत अधिक विलग नहीं थी। बेल्जियन काऊन्सिल डी-ईटाट की स्थापना 23 दिसम्बर, 1946 को कानून बनाकर की गई। यह दो भागों में है। एक भाग विधायी मामलों से संबंधित है और दूसरा प्रशासनिक मामलों से। विधायी प्रभाग विधि पाठ में सुधार करने, उसका प्रारूप तैयार करने तथा उसे सम्पादित करने के लिए उत्तरदायी है। प्रशासनिक प्रभाग का दायित्व सार्वजनिक शक्तियों के उपयोग के संदर्भ में नागरिकों के अधिकारों और हितों की रक्षा सुनिश्चित करना है। फ्रांस की प्रशासनिक विधि के आधारों के समान आधारों पर किसी प्रशासनिक निर्णय को रद्द करना उसके अधिकार क्षेत्र में आता है।

3.9 इटली

वर्ष 1948 की पुरानी संवैधानिक विधि को बदलने वाला नया संविधान 27 दिसम्बर, 1947 को जारी किया गया और इसे 1 जनवरी, 1948 से कार्यान्वित किया गया।

1889 के अधिनियम द्वारा इटैलियन काऊन्सिल ऑफ स्टेट नामक संगठन को तीन पुराने डिवीजनों के अतिरिक्त एक नया डिवीजन और स्थापित करके पुनर्गठित किया गया। चौथे डिवीजन (अथवा अनुभाग) में प्रशासनिक ऐजेन्सियों के कृत्यों के विरुद्ध सभी शिकायतों पर जब ये आवेदन साधारण न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर थे, निर्णय करने की शक्ति निहित थी। इस अधिकारिता का प्रयोग करते हुए काऊन्सिल ऑफ स्टेट प्रशासनिक कार्यों की वैधता के बारे में निर्णय कर सकती थी। जिन आधारों पर कोई प्रशासनिक कार्य अवैध ठहरता है उनका उल्लेख अभी तक विधि में जीवंत फारमूले में उपलब्ध है। अकार्यकुशलता, शक्ति का अतिक्रमण और विधि का अतिलंघन (अथवा हनन) काऊन्सिल ऑफ स्टेट की इस प्रकार की अधिकारिता गैरकानुनी प्रशासनिक कार्यो को रद्द करने का एक उपचार है।

3.10 ग्रीस

विधि संख्या 3713/1928 की धारा 47 ग्रीस काऊन्सिल ऑफ स्टेट की अधिष्ठाई दक्षता की विनियमनकारी तात्विक धारा है फ्रांस की प्रशासनिक विधि के लगभग समान आधार पर ही प्रशासनिक कार्यवाही को रद्द करने की अधिकारिता प्रदान करती है।

3.11 तुर्की

तुर्की में सभी प्रकार के न्यायिक अधिकार क्षेत्र का आधार वर्ष 1961 का संविधान है।

एक पृथक और स्वतंत्र प्रशासनिक न्यायालय प्रणाली का सिद्ध तुर्की में सर्वप्रथम ओटोमैन एम्पायर के अधीन वर्ष 1968 में स्थापित किया गया था और यह तुर्की गणतंत्र में भी यथावत रहा।

1961 के संविधान अनुच्छेद 140 में यह घोषणा की गई है कि काऊन्सिल ऑफ स्टेट (डान्स्टे) उन मामलों के लिए प्रथम प्रशासनिक न्यायालय है जो विधि द्वारा अन्य प्रशासनिक न्यायालयों को निर्देशित नहीं किए जाते है और यह सामान्य रूप से अन्तिम प्रशासनिक न्यायालय है। टर्किश काऊन्सिल ऑफ स्टेट से संबंधित 1964 की विधि संख्या 521 है जिसे बाद में संशोधित किया गया। काऊन्सिल ऑफ स्टैट को किसी भी प्रशासनिक कार्यवाही को अधिकारित संबंधी दोषी, स्वरूप, कारण, विषयवस्तु तथा प्रयोजन के आधार रद्द करने का अधिकार है................।

3.12 योरोपिय कन्वेंशन के अधीन मानव अधिकार प्रशासनिक विधि से सम्बद्धता

मानव अधिकारों पर योरोपीय कन्वेंशन काऊन्सिल ऑफ योरोप ने 1960 में तैयार की थी और यह 1953 से प्रभावी हुई। काऊन्सिल ऑफ योरोप के मैम्बर स्टेट्स जिन्होंने इस कन्वेंशन की पुष्टि की, इसके संविदाकारी पक्षकार बन गए। कन्वेंशन ने कतिपय मानव अधिकार और स्वतंत्रताएं निर्धारित की है जिनकी सुरक्षा बाध्यकारी प्रावधानों द्वारा की जाएगी और योरोपीय कमीशन तथा मानवाधिकार कोर्ट द्वारा अथवा कतिपय परिस्थितियों में योरोपीय काऊन्सिल के मंत्रियों की समिति जिनकी व्याख्या की जाएगी और जिन्हें लागू किया जाएगा।

3.13 अमरीका में स्थिति

अमरीका में भी प्रशासन द्वारा शक्तियों के प्रयोग तथा प्रशासनिक कार्य पर न्यायिक नियंत्रण के महत्व को समझा गया। परिणामस्वरूप, प्रशासनिक अधिकरण युक्तिसंगत प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए प्रक्रिया संबंधी सुरक्षापायों पर बल दिया गया और इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए संधीय प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम, 1946 नामक विधान बनाया गया। यह एक ऐसी विधि थी जिसमें अमरीकी प्रशासनिक ऐजेन्सियों द्वारा पालन किए जाने के लिए मूल प्रक्रियाएं निर्धारित की गयी।

प्रशासनिक विधि संबंधी प्रत्येक मामला किसी नागरिक और प्रशासन के किसी अंग, जिसे अमरीका में सामान्यतया प्रशासनिक ऐजेन्सी कहा जाता है, के बीच विवाद से उत्पन्न होता है। संधीय प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम, 1946 की परिभाषा के अनुसार ऐजेन्सी का अर्थ अमरीका सरकार की कांग्रेस, न्यायालय, गवर्नमैंट ऑफ पजैसनूस, टैरिटरीज अथवा कोलम्बिया जिले के अतिरिक्त प्रत्येक प्राधिकरण से है...... ।

निश्चित रूप से, इस परिभाषा में ऐजेन्सी को सरकार की कार्यकारी शाखा के समतुल्य बताया गया है और इसके अन्तर्गत विधायिका तथा न्यायालयों से बाहर प्रत्येक सरकारी तंत्र प्रशासनिक ऐजेन्सी है।

प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम में ऐजेन्सी के सुनवाई संबंधी संव्यवहार को विनियमित करने वाले बहुत से प्रावधान है। किसी सुनवाई परीक्षक को असंगत कृत्य नहीं सौंपे जाएंगे और ना ही वह मामले से संबंधित किसी तथ्य के बारे में किसी व्यक्ति या पक्ष से कोई परामर्श करेगा (अधिनियम की धारा 5)। परीक्षकों का शपथ दिलाने, सपीमा जारी करने, प्रमाण संबंधित साक्ष्य के मामलों का नियमन करने और कार्यवाहियों को सामान्यतया विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है (अधिनियम की धारा 7)। व्यवहार में प्रक्रिया अनौपचारिक कांफेंस प्रकार की सुनवाई से लेकर ऐसी सुनवाई तक की जाती है जो विचारण के समान है और यह कई दिनों अथवा सप्ताहों तक चलती है। परीक्षार्थी के सम्मुख अभ्यवेदन अधिकार स्वरूप उपलब्ध है (धारा 6)। परीक्षाकों को रिकार्ड रखना होगा और एक विस्तृत चर्चा करनी होगी जो रिकार्ड का ही एक भाग बन जाएगी। तर्कसंगत चर्चा में सभी तथ्यों, विधि तथा रिकार्ड में प्रस्तुत स्वविवेक के बारे में निष्कर्ष और कारण भी दिए जाएंगे [धारा 8 (ख) परीक्षक का प्रारंभिक निर्णय, यदि ऐजेन्सी से कोई अपील नहीं की जाती या पुनरीक्षा के लिए कोई प्रस्ताव नहीं लाया जाता तो अन्तिम निर्णय समझा जाएगा, (धारा 8 (क)]...................। प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक पुनरीक्षा तत्काल उपलब्ध होती है। जहां विधि संबंधी कोई त्रुटि रही हो अथवा जहां ऐजेन्सी अपने निर्णय को किसी सारभूत साक्ष्य पर आधारित करने में विफल रही हो वहां प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम पुनर्विलोकन की अनुमति देता है (धारा 10) (प्रिंसिपिल्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, डी.जी. बेंजाफील्ड तथा एच. व्हिटमोर द्वारा लिखित पृष्ट 344-45)

3.14 हमारे अध्ययन से संबंधित भारत में विगत में सुधार करने के लिए किए गए प्रयास :—

शिकायतें दूर करने की आवश्यकता पर रिपोर्ट ऑफ जस्टिस की विषय वस्तु के समान विधि आयोग ने भी इस संबंध में वाद नीति बनाने की सिफारिश की है।

विधि आयोग की सरकार तथा सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों की वाद नीतियों और युक्तियों पर 126वीं रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिशें की गई है :—

"4.13 यह मानते हुए कि मुकदमेबाजी पूर्णत: अपरिहार्य है विवाद के निपटारे के लिए वैकल्पिक ढंग ढूंढना होगा। एक विकल्प यह हो सकता है कि नियोजकों, कर्मचारियों और संगठन का प्रतिनिधित्व करने वाली एक स्थायी समिति हो जिसके पास जब कभी कोई मामला हो तो ले जाया जा सके और उसका निर्णय आबद्धकर हो। आजकल अधिकतम देश विवादों को निपटाने के लिए न्यायालय से इतर किसी निकाय की तलाश में है। इसलिए ऐसे संगठन के लिए, जो उद्यमों में कार्यरत कर्मचारियों को सामाजिक न्याय की सुविधाएं देने में समर्पित है, विवादों के निपटाने के लिए ऐसे निकाय को संगठित करना आवश्यक है और जो नियोजकों को भी संतुष्ट करे। संगठन त्रिमुखी प्रकृति का है और सभी प्रभावित पक्षों का अपने बीच होने वाले विवादों को निपटाने के लिए ऐसे निकाय में विश्वास हो। विधि आयोग उनके विचार के लिए निश्चित रूप से ऐसे निकाय की खोज करेगा।

"5.19 इसलिए विभिन्न अधिकरण स्थापित करने के लिए समर्थनकारी कारण देना निरर्थक है। फिर यह नहीं भूलना चाहिए कि वर्तमान रिपोर्ट से सुसंगत उपगम पत्र से पब्लिक सेक्टर उपक्रमों/सरकार को अंतर्वलित करने वाले विवादों के विनिश्चय के लिए न्यायालयों का अपवर्जन करके विभिन्न अधिकरणों के लिए सुझाव नहीं मांगे गए थे। वस्तुत: तलाश मुकदमेबाजी संबंधी नीति और पब्लिक सेक्टर उपक्रमों/सरकार द्वारा अनुसरण की जाने वाली युक्ति के लिए इस दृष्टि से है कि यथासंभव मुकदमेबाजी से या न्यायालयों में जाने से बचा जाए तथा विरोधी पक्षकारों के बीच विवादों के निपटारे के लिए कोई तंत्र स्थापित किया जाए। ऐसा पब्लिक सेक्टर उपक्रमों तथा सरकार द्वारा या तद्विरूद्ध मुकदमेबाजी अंतर्वलित करने वाले अधिकरणों की सिफारिश करके निश्चित रूप से अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता।

"7.5 विधि आयोग की जानकारी में यह बात आई है कि सरकार ने लोक शिकायतों को दूर करने के लिए तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए स्वयं मंत्रिमंडल सचिवालय में एक निदेशालय स्थापित करने का संकल्प किया है। उपधारणा है कि भारत सरकार के सचिव की

पंक्ति का अधिकारी इस निदेशालय का प्रधान होगा। प्रथमत: नया निदेशालय रेल, डाक और दूरसंचार तथा बैंककारी से संबंधित शिकायतों की बाबत तब कार्रवाई करेगा यदि संबद्ध विभाग ने शिकायतकर्ता की बात नहीं सुनी। ब्यौरे अभी तैयार किए जाने है किन्तु रूप विधान तीन स्तरीय विन्यास का है। एक स्वयं विभाग में, एक मानीटरी कक्ष और मंत्रिमंडल सचिव के स्तर पर एक निदेशालय । जब यह पूर्णत: क्रियात्मक बना दिया जाएगा तब इस प्रयोग का मूल्यांकन किया जा सकेगा। अभी विधि आयोग इस लाभप्रद प्रयत्न की जानकारी ले सकता है। शिकायतें लेकर आने वाले व्यक्तियों के प्रति दृष्टिकोंण में पूर्ण और आमूल परिवर्तन की अपेक्षा होगी। अनुभव से पता चलता है कि वह व्यक्ति जो शिकायत को दूर कर सकता है साधारणतया शिकायत करने वाले की सुनवाई नहीं करता और यह सामाजिक संपरीक्षा के अधीन नहीं होता। सामाजिक संपरीक्षा के अभाव में उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को क्षति पहुंचती है और शिकायत करने वाले व्यक्ति और उस व्यक्ति के बीच जो शिकायत को दूर कर सकता है आलस्य की दरार विकसित होती रहती है। प्रभावी उपायों का सुझाव देते हुए इस पहलू को केन्द्रीकृत करना होगा।

8.6 इसलिए, पहली बात जिसको करना अपेक्षित है कि भारत सरकार सभी पब्लिक सेक्टर उपक्रमों पर आबद्धकर एक अनिवार्य निदेश निकाले कि किसी एक या अधिक पब्लिक सेक्टर उपक्रमों या दो या अधिक पब्लिक सेक्टर उपक्रमों के एक ओर और सरकार दूसरी ओर पक्षकार होने की दशा में, पक्षकार विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करेंगे। विधिक युक्ति द्वारा यह उपधारणा की जाएगी यदि विवाद के पक्षकार दो या अधिक पब्लिक सेक्टर उपक्रम या पब्लिक सेक्टर उपक्रम एक ओर और कर प्राधिकारियों को छोड़कर सरकार दूसरी ओर है, विधिमान्य माध्यस्थम् करार विद्यमान है।

8.7 इस सुझाव के लिए शक्ति और प्रभावकारिता प्रदान करने के लिए भारत सरकार को एक माध्यस्थम् पेनल स्थापित करना चाहिए जिसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के सेवानिवृत्त न्यायाधीश हों जिसमें से पक्षकार एक या अधिक मध्यस्थों के चयन के लिए करार कर सकते है और करार न हो सकने पर नियुक्ति विधि मंत्री द्वारा पेनल से की जाएगी। पेनल में पर्याप्त मात्रा में व्यक्ति होने चाहिए जिससे कि कार्य का उनमें आवंटन किया जा सके। पेनल में व्यक्तियों की फीस कार्यपालक आदेश द्वारा पहले ही नियत कर दी जाएगी और जो इस प्रकार विहित फीस स्वीकार करने को सहमत हो जाते हैं उन्हें पेनल में दर्ज कर लिया जाएगा। राष्ट्रीय भलाई के लिए अपने अपने अनुभव और विशेषशीय स्वरूप को आन्वयिक उपयोग में लाने के लिए उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के रजामंद सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की कमी नहीं है।

8.8 यदि आवश्यक हो तो माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 का संशोधन कर दिया जाना चाहिए जिससे उस न्यायालय को, जिसके समक्ष किसी पब्लिक सेक्टर उपक्रम ने माध्यस्थम् का आश्रय लिए बिना मुकदमेबाजी आरम्भ की जो उपक्रम को माध्यस्थम में जाने के लिए विवश करने के लिए सशक्त किया जा सके और वाद को मात्र रोके नहीं बल्कि उसे खारिज कर दे।

8.9 मध्यस्थ का पंचाट अंतिम होगा और जब तक कि विधि मंत्री विधिमान्य और उचित आधार पर पंचाट को चुनौती देने की अनुज्ञा न दे वह किसी न्यायालय में चुनौती योग्य नहीं होगा।

8.10 पब्लिक सेक्टर उपक्रम एक ओर कराधान प्राधिकारी दूसरी ओर के बीच विवादों के मामले में साधारणतयां विवाद आय-कर अधिकारी या निरीक्षण सहायक आयुक्त या आय-कर आयुक्त या प्रत्यक्ष कर उद्गृहीत करने वाले कानूनों के अधीन कृत्य कर रहे निम्नतम ग्रेड के कर अधिकारी के समक्ष उत्पन्न होगा। इस सीमा तक विधि को अपने क्रम का अनुसरण करने दिया जाना चाहिए। एक बार आयुक्त विवाद का विनिश्चय करता है तो व्यथित उपक्रम को सम्बद्ध मंत्रालय से जिसके अधीन वह कार्य कर रहा है इस बात की अनुज्ञा के लिए संपर्क करने दिया जाए कि क्या मामले में आगे मुकदमेबाजी की जाए। यदि आवश्यक हो तो माध्यस्थम् पेनल में पेनलित एक व्यक्ति की राय अभिप्राप्त कर ली जाए और वह आबद्धकर होनी चाहिए। यदि कर न्यायालयों को स्थापित करने की विधि आयोग की सिफारिश स्वीकार कर ली जाती है और कार्यान्वित कर ली जाती है तो मामले में केन्द्रीय कर न्यायालय तक मुकदमेबाजी की जा सकेगी और उसका वहां अन्त होना चाहिए।

8.11 पब्लिक सेक्टर उपक्रम और उसके कर्मचारियों के बीच विवाद की बात करते हुए, प्रत्येक पब्लिक सेक्टर उपक्रम को अपना एक शिकायत कक्ष स्थापित करना चाहिए जिसमें प्रबन्ध तंत्र और कर्मचारियों के प्रतिनिधि हो जो प्रत्येक पक्ष की ओर से तीन से अधिक न हो और जिसका अध्यक्ष कोई सेवानिवृत्त न्यायाधीश हो जिसने उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य किया हो या औद्योगिक न्यायालय/अधिकरण का अध्यक्ष रहा हो। व्यष्टिक कर्मचारी को अंतर्वलित करने वाला प्रत्येक विवाद यदि आवश्यकता हो तो स्थायी आदेशों का या सेवा की शर्तों का संशोधन करके या शिकायत कक्ष के समक्ष लाया जाना चाहिए। शिकायत कक्ष का विनिश्चय आबद्ध कर होगा। यदि विवाद में एक से अधिक किन्तु सभी कर्मचारी अंतर्वलित नहीं है तो उसी प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा। ज्येष्ठता, प्रोन्नति और सम्बद्ध विवाधक भी इसी कक्ष के समक्ष लाए जाने चाहिए। प्रोन्नति दीर्घकाल से प्रबंध के कर्तव्य के रूप में समाप्त हो गई है। इसलिए शिकायत कक्ष उसके संबंध में कार्यवाही करने के लिए समक्ष होगा। प्रथमत: प्रोन्नति का विनिश्चय प्रबंधतंत्र द्वारा किया जा सकेगा किन्तु दी गई प्रोन्नतियों या इंकार की गई प्रोन्नतियों

से उत्पन्न विवाद शिकायत कक्ष के समक्ष लाए जा सकेंगे। शिकायत कक्ष का विनिश्चय अंतिम होगा और यदि कोई इस व्यवस्था और उसके प्रभावी क्रियान्वयन के होते हुए मामला न्यायालय में ले जाता है तो न्यायालय को विवादग्रहण करने से इंकार कर देना चाहिए।

8.20 भारत सरकार के कर्मचारियों को उनके विभागीय अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की बाबत कार्यवाही करते हुए पैरा 8.11 में उपदर्शित प्रक्रिया का प्रभावी रूप से अनुसरण करना चाहिए। प्रभावी शिकायत कक्ष स्थगित किया जाना चाहिए जिसे सक्रिय रहना चाहिए और कर्मचारिवृंद द्वारा उठाई गई समस्याओं का समाधान करने की स्थिति में होना चाहिए। जहां विधिक विरचना का कोई मामला अंतर्वलित है जिसकी कोई नजीर नहीं है और यदि शिकायत कक्ष उस विषय के बारे में प्रभावी कार्यवाही करने में असमर्थ है, तो विवाद से संबंधित विभाग और संबंधित कर्मचारी मध्यस्थ पेनल के सदस्य की, जिसे विधि प्रश्न पर निर्देश किया जाए, राय मानने के लिए सहमत होना चाहिए और उसकी राय प्राप्त करनी चाहिए। विवाद उसकी राय के अनुसार निपटाए जाने चाहिए।

8.21 मुकदमेबाजी कम करने और मुकदमेबाजी की संस्कृति को दबाने के गुरूत्तर राष्ट्रीय हित में यह बराबर आवश्यक है कि इसमें सिफारिश किए गए भिन्न प्रकार के निकायों पर निरंतर निगरानी रखने के लिए एक केन्द्रीय निकाय स्थापित किया जाना चाहिए। इस केन्द्रीय निकाय का कार्य समन्वय प्रकृति, संघ और राज्यों के बीच, राज्यों और राज्यों के बीच परस्पर, पब्लिक सेक्टर उपक्रमों के बीच परस्पर, पब्लिक सेक्टर उपक्रमों और कराधान प्राधिकारियों के बीच और अंतिमत: सरकार और पब्लिक सेक्टर उपक्रम एक ओर और नागरिक दूसरी ओर मुकदमेबाजी को कम करने के अर्थोपाय ढूंढने का कार्य होना चाहिए। इसमें योजना, युक्ति और नीति विषयक विनिश्चयों के प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता होती है। यह ऐसा निकाय होना चाहिए जो न्यायालय में भागने और अपीलें करके उच्चतम न्यायालयों में भागने की प्रवृत्ति को रोक सकें। वस्तुत: यह निकाय प्रभावी रूप से मूल नियम बना सकता है जो जब प्रभावी रूप से अनुसरित किए जाएं, मुकदमेबाजी की प्रवृत्तियों पर सीधा असर डाल सकें। ऐसे निकाय को उचित रूप से परिसंघीय विधिक कक्ष के नाम से वर्णित किया जा सकता है जिसमें सेवानिवृत्त न्यायाधीश, सेवा निवृत्ति विधि अधिकारी, केन्द्रीय तथा राज्यों के दोनों, तथा ज्येष्ठ अधिशासक, जिन्होंने पब्लिक सेक्टर उपक्रमों में कार्य किया है, हो सकेंगे। परिसंघीय विधिक कक्ष के कृत्य और कर्तव्य मुकदमेबाजी का बारबार आश्रय लेने को कम करने की दृष्टि से नीति और युक्ति की योजना पर संकेन्द्रित करते हुए विस्तार से बनाए जाने चाहिए। यह कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संपर्क का भी कार्य कर सकता है। आज इस संपर्क का अभाव है और कई बुराइयों के लिए, जिन्हें ठीक किया जा सकता है, जिम्मेदार है। भारत सरकार को समुचित निबंधनों सहित ऐसे परिसंघीय विधिक कक्ष स्थापित करने चाहिए।"

"8.22 बढ़ती हुई मुकदमेंबाजी न्यायपालिक और कार्यपालिका मात्र के लिए ही चिन्ता का विषय नहीं है। यह मामले के संबंध में संकीर्ण दृष्टिकोण होगा। यह न्यायपालिका के लिए चिन्ता का विषय इसलिए विनिश्चय की यथार्थता को प्रश्नगत करने के लिए सरकार द्वारा या उसकी ओर से किए गए प्रत्येक मुकदमें की जांच करने की शक्ति सहित यह बताने की दृष्टि से कि मुकदमेबाजी न करने के लिए भविष्य में सावधान रहना चाहिए। लोक लेखा समिति जैसी संसदीय मुकदमा समिति होनी चाहिए। संसदीय समिति सरकार, पब्लिक सेक्टर उपक्रमों और सरकार के विभागों और माध्यमों द्वारा मुकदमेबाजी पर उपगत व्यय की विस्तृत जानकारी प्रत्येक वर्ष मांग सकती है और किसी विशेष मुकदमें के जो परिहार्य था किन्तु फिर भी किया गया, समीक्षण का जिम्मा ले सकती है। यह जांच कर सकती है कि क्या अपीलें मात्र वाह्य और असुसंगत आधारों के लिए की जाती है। इससे उन अधिकारियों का जिनमें मुकदमेबाजी आरम्भ करने और जारी रखने के लिए विनिश्चय लेने की शक्ति निहित है उत्तरदायित्व हो जाएगा। समिति की संरचना स्वयं संसद के लिए चिन्ता का विषय है।"

3.15 न्यायिक प्रशासन में विधिक व्यवसाय की भूमिका पर अपनी 131वीं रिपोर्ट में विधि आयोग ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिश की है :—

"3.15 एक अन्य प्रवृत्ति जो अभी हाल ही में प्रकट हुई है, विशेषतया जहां मुकस्सिल अदालतों के लिए अभिवाचन तैयार किए जाते है, यह कि तथ्यों और विधि के परेशान करने वाले तथा अविश्वसनीय मुद्दे उठाए जाते हैं .... "

3.16 सकारात्मक नियंत्रण के लिए, किसी भी पक्ष के लिए लागत की मात्रा अभिनिर्णीत करते समय, पीठासीन न्यायाधीश को यह बात भी स्पष्ट करनी चाहिए कि क्या अविश्वसनीय और परेशान करने वाले बचाव तर्क प्रस्तुत किए गए जिनसे ऐसे विषय उठे जिन पर पक्षों में बहुत मतभेद थे और जिन पर निर्णय रिकार्ड करने में कितना समय लगा। यदि पीठासीन न्यायाधीश इस बात से सन्तुष्ट है कि तथ्यों तथा विधि से संबंधित ऐसे परेशान करने वाले और पूर्ण तथा अविश्वसनीय बचाव तर्क प्रस्तुत किए गए थे उनका निर्णय में उल्लेख करना चाहिए और लागत की मात्रा अभिनिर्णीत की जानी चाहिए।"

3.16 उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलम्ब और विचाराधीन पड़े मामलों पर अपनी 79वीं रिपोर्ट में विधि आयोग ने अन्य बातों के साथ -साथ सिफारिश की है :—

"16.17 सिविल अपीलों की चर्चा करते समय हमने ऐसी अपीलों को समूहबद्ध करने की आवश्यकता बताई थी जिनमें विधि का वही प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। रिट अर्जियों के संबंध में यह और भी अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक है। अधिकतर यह होता है कि प्रशासनिक अधिकरणों के आदेशों के बारे में बहुत सी रिट अर्जियां फाइल की जाती है जिनमें न केवल विधि का वही प्रश्न बल्कि वही या वैसे ही तथ्य भी अन्तर्ग्रस्त होता है। रजिस्ट्री द्वारा ऐसी सब अर्जियों को समूहबद्ध करने से इन मामलों के शीघ्र और संतोषजनक निपटारे में बड़ी सहायता होगी।"

17.12 विरोधी मतों की अनिवार्यता : निस्संदेह यह सच है कि विभिन्न न्यायालयों द्वारा निर्देशों के निपटारे के कभी-कभी विभिन्न और विरोधी मत होते हैं। यह एक ऐसी बात है जिससे बचा नहीं जा सकता। किन्तु यह उल्लिखित करना आवश्यक है कि जैसा अन्यत्र कहा गया है अपील अधिकरण इस बात के लिए सशक्त है कि वह किसी विधि के प्रश्न का सीधे उच्चतम न्यायालय को निर्देश उस दशा में कर सकता है जब अधिकरण की यह राय हो कि विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न के संबंध में उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों मे विरोध होने के कारण सीधे उच्चतम न्यायालय को निर्देश करना समीचीन है।

17.13 निर्देश के स्थान पर अपील : यह मत भी अभिव्यक्त किया गया है कि अपील अधिकरण द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश करने की वर्तमान प्रक्रिया समाप्त कर दी जानी चाहिए और उसके स्थान पर विधि के किसी प्रश्न पर अथवा विधि के किसी सारवान प्रश्न पर अधिकरण के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय को अपील होनी चाहिए। स्थिति, जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है यह है कि संबद्ध आय-कर अधिकारी से अपील तथ्य तथा विधि के प्रश्न पर भी अपील अधिकरण को होती है। तथ्य के प्रश्न पर अपील अधिकरण का निष्कर्ष अंतिम होता है। किन्तु ऐसे मामलों में जिनमें निर्धारिती या विभाग विधि के प्रश्न पर अपील अधिकरण के निष्कर्ष से अपने को व्ययधित अनुभव करता है उनमें वह अधिकरण के आदेश से पैदा होने वाले विधि के प्रश्न पर उच्च न्यायालय को निर्देश के लिए विहित समय के अन्दर, आयकर अधिनियम 1961 की धारा 256(1) के अधीन अपील अधिकरण के पास आवेदन फाईल कर सकता है। यदि अपील अधिकरण को, विरोधी पक्षकार को सूचना जारी करने के पश्चात् पता चलता है कि उसके आदेश से कोई विधि का प्रश्न पैदा होता है तो वह मामले का कथन करता है और विधि के निश्चित प्रश्न को उच्च न्यायालय को निर्देशित करता है।

यदि अपील अधिकरण उच्च न्यायालय को निर्देश करने से इन्कार करे तो व्यथित व्यक्ति विधि के उस प्रश्न के संबंध में जिसके लिए अधिकरण ने आवेदक की प्रार्थना को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था उच्च न्यायालय को निर्देश करने के लिए अपील अधिकरण को निदेश देने वाला आदेश करने के लिए आयकर अधिनियम की धारा 256 की उपधारा (2) के अधीन उच्च न्यायालय को आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है। ऐसे आवेदन पर उच्च न्यायालय, दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् उस दशा में जब मामले की परिस्थितियों में अपेक्षित हो, विधि के प्रश्न का उच्च न्यायालय को निर्देश करने के लिए अपील अधिकरण को निदेश देने वाला आदेश करेगा। उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में अपील अधिकरण मामले का कथन तैयार करता है और निश्चित प्रश्न को उच्च न्यायालय को निर्देशित करता है।

17.18ए अपील का फायदा : निर्देश को समाप्त करने और उसके बदले में अपील का अधिकार देने से यह फायदा होगा कि विधि के प्रश्न को उच्च न्यायालय को निर्देशित करने की कार्यवाहियों में अपील अधिकरण के समक्ष लगने वाला समय बचाया जा सकेगा। इससे आयकर अधिनियम की धारा 256 की उपधारा (2) के अधीन आवेदन करने की आवश्यकता उन मामलों में नहीं रहेगी जिनमें अपील अधिकरण ने विधि के किसी प्रश्न को उच्च न्यायालय को निर्देशित करने से इन्कार कर दिया है।

17.18 अपील अधिकरण द्वारा सीधे उच्चतम न्यायालय को निर्देश : यह उल्लेख करना उचित होगा कि यदि धारा 256 के अधीन किए गए आवेदन पर, अपील अधिकरण की यह राय है कि विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न के संबंध में उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में विरोध होने के कारण यह समीचीन है कि सीधे उच्चतम न्यायालय को निर्देश किया जाए तो अपील अधिकरण मामले का कथन तैयार कर सकेगा और अपने अध्यक्ष के माध्यम से उसे सीधे उच्चतम न्यायालय को निर्देशित कर सकेगा।

17.19 और टिप्पण आवश्यक नहीं। चूंकि अधिकरण के आदेश के खिलाफ निर्देश के स्थान पर अपील की बात पर पहले ही उच्च न्यायालय बकाया समिति ने और विधि आयोग की 58वीं रिपोर्ट में, जो 1974 में भेजी गई थी, चर्चा की जा चुकी है इसलिए हम इस मामले में अब आगे और कुछ नहीं कहना चाहते।

पंद्रहवां विधि आयोग इस समय निर्देश के स्थान पर अपील की व्यवस्था करने के लिए विचार का अनुसरण करना नहीं चाहता।

3.17 उच्च न्यायालयों के निर्णयों में एकरूपता लाने के उद्देश्य से, विधि आयोग ने केन्द्रीय विधियों पर उच्च न्यायालयों के विरोधी निर्णयों—किस प्रकार आरंभ में ही दबाने तथा समाधान के प्रस्ताव विषय पर अपने 136वें प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिश की है :—

''दूसरी सिफारिश

उच्च न्यायालय स्तर पर परस्पर विरोधी निर्वचनों को आरम्भ में ही दबा देने के लिए तंत्र विकसित करने की आवश्यकता और प्रस्तावित समाधान।

5.3.1 वह प्रश्न जिसका समाधान करना अपेक्षित है उपयुक्त तंत्र विकसित करने के लिए आवश्यकता के बारे में जिससे कि विधि के प्रश्नों पर एकरूपता बनाए रखी जाए, सुदृढ़ की जाए और पुनः स्थापित की जाए क्योंकि वर्तमान संवैधानिक और कानूनी उपबन्ध जो ऐसी एकरूपता बनाए रखने के लिए परिकल्पित है तभी प्रवर्तित होते है जब मामला व्यथित पक्षकार द्वारा अपील के रूप में सर्वोच्च न्यायापालिका में ले जाया जाता है या विनिश्चयों में परस्पर विरोध की ओर ध्यान देने के लिए विधानमंडल को समय मिलता है। उच्चतम न्यायालय की सलाहकारी अधिकारिता जैसे कुछ विशेष उपबंधों को छोड़कर यह पता चलता है कि वह विषय जिस पर एकरूपता का अभाव है विनिश्चय के लिए तभी आ सकता है जब कोई वादी उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का सहारा लेता है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई वादी जो विधि के प्रश्न पर उच्च न्यायालय में असफल हो गया है, उच्चतम न्यायालय में जाने का व्यय नहीं उठा सकता या किसी कारण से उच्चतम न्यायालय में नहीं जाना चाहता तब उच्च न्यायालय का विनिर्णय प्रवृत्त रहता है। विधि के किसी विशेष प्रश्न पर विनिश्चयों में परस्पर विरोध वैसे ही बना रहेगा जैसा वह है। यह सन्तोषजनक स्थिति नहीं है।

5.3.2 उच्च न्यायालयों के बीच विचारों में परस्पर विरोध को पैदा होने देना और इसका समाधान करने से पूर्व कई वर्षों वरन् दशकों के लिए निरूत्साहित रहना ''यदि'' परस्पर विरोध को उच्चतम न्यायालय में ले जाया जाता है और सम्यक् अनुक्रम में सुलझाया जाता है ''जब'' मामला वहां सुनवाई के लिए आता है, आदर्श समाधान से कम है। अधिक बेहतर, अधिक गतिशील और बहुत अधिक समाधानप्रद समाधान, जो समस्या का सुव्यवस्थित रीति से समाधान करेगा, विकसित करने की आवश्यकता है और आयोग का वर्तमान प्रयास ऐसा ही है।

5.3.3 प्रस्तावित समाधान के परिवेश निम्नलिखित हैं :—

(1) जब ''क'' उच्च न्यायालय को अखिल भारत विधि (भारत के संविधान का अपवर्जन करते हुए) के बारे में समस्या का सामना करना होता है जिस पर ''ख'' उच्च न्यायालय ने पहले ही निर्णय दिया है, यदि ''क'' उच्च न्यायालय का ''ख'' उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से भिन्न या असंगत विचार है तो वह अपना निर्णय देने के स्थान पर उच्चतम न्यायालय को निर्देश करेगा। निर्देश आदेश के साथ तर्कसंगत राय होगी तथा ''ख'' उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से भेद करने वाले कारणों के विशेष विनिर्देश सहित उसका अपना विचार प्रतिपादित किया जाएगा।

(2) (क) निर्देश का समर्थन करने वाला पक्षकार उच्चतम न्यायालय में उपस्थिति के लिए व्यवस्था करेगा किन्तु ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं होगा।

(ख) ऐसे पक्षकार को निर्देश-आदेश में दिए गए तर्क के अनुपूरक लिखित निवेदन प्रस्तुत करने का विकल्प होगा।

(ग) निर्देश का विरोध करने वाले पक्षकार को भी उच्चतम न्यायालय में अधिवक्ता नियुक्त करने का और लिखित निवेदन प्रस्तुत करने का, जिसमें अन्य बातों के साथ लिखित निवेदनों का, यदि दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए हों, विरोध करने का वैसा ही विकल्प होगा।

(3) उच्चतम न्यायालय उस राज्य की राज्य सरकार से जिसमें ''क'' और ''ख'' उच्च न्यायालय स्थित हैं, संबद्ध उच्च न्यायालयों के विचारों को मौखिक तर्क द्वारा समर्थित करने के लिए संबद्ध राज्यों के राज्य वकील पैनल में से किसी अधिवक्ता को राज्य के खर्च पर नियुक्त करने की अपेक्षा कर सकेगा।

(4) सभी ऐसे निर्देश किसी विशेष न्यायपीठ को सौंपे जा सकेंगे जो एकरूपता सुनिश्चित करने की अन्तर्निहित आत्यिकता को दृष्टि में रखते हुए, ऐसे सभी निर्देशों का निपटारा, उच्चतम न्यायालय में निर्देशों की प्राप्ति से छह मास के भीतर, करने का प्रयास कर सकेगा।

(5) यदि ''ख'' उच्च न्यायालय या किसी अन्य उच्च न्यायालय के निर्णय से उसी प्रश्न पर कोई विशेषज्ञ इजाजत याचिका या अपील पहले ही लंबित है तो उस मामले को निर्देश के साथ जोड़ा जा सकेगा। किसी हितबद्ध पक्षकार को मध्यपेक्षियों के रूप में उपस्थित होने दिया जा सकेगा।

(6) उच्चतम न्यायालय निर्देश को लौटा सकेगा यदि यह प्रतीत होता है कि पक्षकार दुस्संधि से कार्य कर रहे हैं।

(7) महान्यायवादी पर निर्देश की प्रति की तामील की जा सकेगी और यदि ऐसी वांछा की जाए तो वह संबद्ध केन्द्रीय कानून के संबंध में केन्द्रीय सरकार का विचार बताने का हकदार होगा।

(8) निर्देश करने वाला उच्च न्यायालय निर्दिष्ट प्रश्न के संबंध में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के प्रकाश में सभी प्रश्नों पर अपील का अन्तिम रूप से निपटारा करेगा।

(9) निर्देश में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देश को मान्य ठहराने की दशा में ''ख'' उच्च न्यायालय के विनिश्चय पर कोई समाधान या प्रभाव नहीं पड़ेगा यदि मामला उच्चतम न्यायालय में न ले जाए जाने के कारण पक्षकारों के बीच अन्तिम हो गया है और उक्त विनिश्चय ''ख'' उच्च न्यायालयों में पक्षकारों के बीच अविच्छिन्न रहेगा।

5.3.4 उपयुक्त सिफारिश को प्रभावी करने के लिए उचित विधायन अधिनियमित करना होगा। कार्य को सुकर बनाने के लिए प्रस्तावित विधायन का एक प्रारूप परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

भाग - दो

3.18 सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 के अन्तर्गत न्यायनिर्णयन तंत्र

सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 122 के अन्तर्गत सीमाशुल्क अधिनियम के अध्याय चौदह के अधीन प्रत्येक दशा में जिसमें कोई वस्तु अधिहरण की दायी है या कोई व्यक्ति शास्ति का दायी है, ऐसी शास्ति या अधिहरण :—

(क) सीमाशुल्क कलक्टर या सीमाशुल्क डिप्टी कलक्टर द्वारा बिना किसी सीमा के न्यायनिर्णीत की जा सकती है।

(ख) जहां अधिहरण के लिए दायी माल का मूल्य पचास हजार रुपये से अधिक नहीं है वहां सीमाशुल्क सहायक कलक्टर द्वारा न्यायनिर्णीत की जा सकती है।

(ग) जहां अधिहरण के लिए दायी माल का मूल्य ढाई हजार रुपये से अधिक नहीं है वहां सीमाशुल्क सहायक कलक्टर से निम्न पंक्ति के सीमाशुल्क के किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा न्यायनिर्णीत की जा सकती है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत शास्ति के लिए अधिहरण का आदेश केवल प्रशासनिक या कार्यकारी कृत्य नहीं है अपितु वास्तव में अर्ध-न्यायिक कृत्य है।

अधिनियम में आयातित और निर्याति माल, यथास्थिति, के लिए मूल्यांकन और वर्गीकरण का प्रावधान है।

कलक्टर (अपील) को अपीलें

धारा 128 के अन्तर्गत कोई व्यक्ति जो सीमाशुल्क कलक्टर से निम्न पंक्ति के किसी सीमाशुल्क अधिकारी द्वारा इस अधिनियम के अधीन दिए गए किसी विनिश्चय या आदेश से व्यथित है, ऐस विनिश्चय या आदेश के संसूचित किए जाने की तारीख से तीन माह के भीतर कलक्टर (अपील) को अपील कर सकेगा। यह अधिकार अधिनियम में उल्लिखित बहुत से अन्य मामलों के अतिरिक्त वर्गीकरण और मूल्यांकन जैसे महत्वपूर्ण मामलों पर भी लागू होगा।

धारा 128क के अन्तर्गत, कलक्टर (अपील) ऐसी जांच करने के बाद जो आवश्यक हो, जिस विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसकी पुष्टि, उसका उपान्तरण या उसे निरस्त करते हुए ऐसा आदेश दे सकेगा जो वह ठीक समझे, अथवा उस मामले को ऐसे निदेशों के साथ जो वह ठीक समझे, यदि आवश्यक हो, तो अतिरिक्त साक्ष्य लेकर, नए सिरे से, यथास्थिति, न्यायनिर्णयन या विनिश्चय करने के लिए न्याय-निर्णयक प्राधिकारी को पुनः निर्दिष्ट कर सकेगा। अपील के निपटाये जाने पर कलक्टर (अपील) अपने द्वारा दिया गया आदेश अपीलार्थी, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी और सीमाशुल्क कलक्टर को संसूचित करेगा।

अपील अधिकरण

अधिनियम की धारा 129 के अधीन केन्द्रीय सरकार ने न्यायिक और तकनीकी सदस्यों का एक अपील अधिकरण गठित किया है जो सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के नाम से जाना जाता है।

कोई व्यक्ति जो निम्नलिखित आदेशों में से किसी से व्यथित है, ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा :—

(क) सीमाशुल्क कलक्टर द्वारा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के रूप में दिया गया विनिश्चय या आदेश,

(ख) कलक्टर (अपील) द्वारा धारा 128क के अधीन दिया गया आदेश,

(ग) धारा 128क के अधीन जैसी वह नियत दिन के ठीक पहले थी, बोर्ड या सीमाशुल्क कलक्टर (अपील) द्वारा दिया गया आदेश,

(घ) नियत दिन के पहले या पश्चात् धारा 130 के अधीन, जैसी वह उस दिन से ठीक पहले थी, बोर्ड या सीमाशुल्क कलक्टर (अपील) द्वारा दिया गया आदेश।

परन्तु यह कि अपील अधिकरण स्वविवेकानुसार खण्ड (ख), खण्ड (ग) तथा खण्ड (घ) में निर्दिष्ट किसी आदेश की बाबत अपील ग्रहण करने से इन्कार कर सकेगा जहां :—

(एक) धारा 125 के अधीन अधिहरण के बदले में जुर्माना देने का विकल्प माल के स्वामी को दिए बिना अधिहरण किए गए माल का मूल्य

(दो) किसी विवादास्पद मामले में जो ऐसे मामले से भिन्न है जहां निर्धारण के प्रयोजनों के लिए सीमाशुल्क की दर या माल के मूल्य के संबंध में किसी प्रश्न का अवधारण विवाद है या विवाद्य बातों में से एक है वहां अन्तर्वलित शुल्क का अन्तर या अन्तर्वलि शुल्क, या

(तीन) ऐसे आदेश द्वारा अवधारित जुर्माने या शास्ति की रकम पचास हजार रुपये से अधिक नहीं है।

उपधारा (2) के अधीन, यदि सीमाशुल्क कलक्टर की राय है कि धारा 128 के अधीन, जैसी वह नियत दिन के ठीक पहले थी, सीमाशुल्क अपील कलक्टर या कलक्टर (अपील) द्वारा धारा 128क के अधीन दिया गया आदेश विधिमान्य या उचित नहीं है तो वह अपनी ओर से उस आदेश के विरुद्ध अपील अधिकरण को अपील करने का उचित अधिकारी को आदेश दे सकेगा।

धारा 129(ख) के अधीन अपील अधिकरण, अपील के पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् जिस विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसकी पुष्टि, उसका उपान्तरण या उसे निरस्त करते हुए उस पर ऐस आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझता है, अथवा उस मामलें को ऐसे निदेशों के अनुसार जो अपील अधिकरण उचित समझे और अतिरिक्त साक्ष्य लेने के पश्चात्, यदि आवश्यकता हो, यथा स्थिति, नए सिरे से न्यायनिर्णयन या विनिश्चय के लिए उस प्राधिकारी को पुनः निर्दिष्ट कर सकेगा जिसने ऐसा विनिश्चय या आदेश दिया था।

बोर्ड या सीमाशुल्क कलक्टर की कतिपय आदेश देने की शक्तियां

धारा 129घ के अधीन, बोर्ड स्वप्रेरणा से, किसी ऐसी कार्यवाही का अभिलेख, जिसमें सीमाशुल्क कलक्टर ने न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के रूप में इस अधिनियम के अधीन कोई विनिश्चय या आदेश दिया है, ऐसे विनिश्चय या आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है और आदेश द्वारा ऐसे कलक्टर को यह निदेश दे सकता है कि वह ऐसे विनिश्चय या आदेश से उद्भूत होने वाले ऐसे प्रश्नों का अवधारण कराने के लिए अपील अधिकरण को आवेदन करे जो बोर्ड द्वारा अपने आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं। इसी प्रकार सीमाशुल्क कलक्टर स्वप्रेरणा से किसी ऐसी कार्यवाही का अभिलेख , जिसमें उसके अधीनस्थ किसी न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ने इस अधिनियम के अधीन कोई विनिश्चय या आदेश दिया है, ऐसे विनिश्चय या आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकता है और उसकी प्रतीक्षा कर सकता है और आदेश द्वारा ऐसे प्राधिकारी को यह निदेश दे सकता है कि वह ऐसे विनिश्चय या आदेश से उद्भूत होने वाले ऐसे प्रश्नों का अवधारण कराने के लिए कलक्टर (अपील) को आवेदन करे जो सीमाशुल्क कलक्टर द्वारा अपने आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं। अपील अधिकरण या कलक्टर (अपील) को, यथास्थिति, दिया गया इस प्रकार का आवेदन इस प्रकार सुना जाएगा मानो ऐसा आवेदन न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध की गई अपील हो और ऐसे आवेदनों पर अपील संबंधी उपबंध लागू होंगे।

जहां विनिश्चय या आदेश जिसके विरुद्ध अपील की गई है उस मामले पर मांगे गए किसी शुल्क जो सीमाशुल्क प्राधिकारियों के नियंत्रण में नहीं है, या इस अधिनियम के अधीन उद्गृहीत किसी शास्ति की बाबत है वहां ऐसे विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की वांच्छा करने वाले व्यक्ति को उन मामलों को छोड़कर जिनमें ऐसे व्यक्ति को असम्यक् कष्ट होता हो, अपील के लम्बित रहने के दौरान, उचित अधिकारी के पास मांगा गया शुल्क या उद्गृहीत शास्ति जमा करानी होगी।

उच्च न्यायालय को मामले का कथन

धारा 130 के अधीन सीमाशुल्क कलक्टर या दूसरा पक्ष धारा 129ख के अधीन आदेश के विरुद्ध (जो ऐसा आदेश नहीं है जो अन्य बातों के साथ-साथ निर्धारण के प्रयोजनों के लिए सीमाशुल्क की दर या माल के मूल्य से संबंधित किसी प्रश्न के अवधारण से संबंधित है) अपील किसी विधि के प्रश्न का कथन तैयार करे और दूसरे पक्ष को पर्याप्त अवसर प्रदान करने के पश्चात्, उसका निदेश उच्च न्यायालय को करे। यदि अपील अधिकरण मामले का कथन करने से इस आधार पर इंकार करता है कि कोई विधि का प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है तो सीमाशुल्क कलक्टर या दूसरा पक्ष उच्च न्यायालय को आवेदन कर सकेगा और उच्च न्यायालय यदि अपील अधिकरण के विनिश्चय के सही होने के संबंध में उच्च न्यायालय का समाधान नहीं हो जाता है तो वह अपील अधिकरण से उस मामले का कथन करने की और उसका निर्देश करने की अपेक्षा कर सकेगा और ऐसी किसी अध्यपक्षा की प्राप्ति पर अपील अधिकरण तदनुसार मामले का कथन करेगा और उसे निर्दिष्ट करेगा।

यदि अपील अधिकरण की यह राय है कि विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न की बाबत उच्च न्यायालय के विनिश्चयों में विरोध होने के कारण यह समीचीन है कि निर्देश सीधे उच्चतम न्यायालय को किया जाए तो अपील अधिकरण मामले का कथन तैयार कर सकेगा और अधिनियम की धारा 130क के अधीन अपने अध्यक्ष के माध्यम से उसका निदेश सीधे उच्चतम न्यायालय को कर सकेगा।

यदि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का समाधान इस बात के संबंध में नहीं हुआ है कि उसको निर्दिष्ट मामले में कथन इतने पर्याप्त हैं कि वह उनके द्वारा उठाए गए प्रश्नों का अवधारण कर सके तो न्यायालय उसे अपील अधिकरण को उसमें ऐसे परिवर्तन या परिवर्तन करने के प्रयोजन के लिए, जैसे वह उस निमित निर्दिष्ट करे, लौटा सकेगा।

58 LJ&CA/2000—4

धारा 130-घ के अधीन उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय ऐसा कोई मामला सुनने पर उसमें उठाए गए विधिक प्रश्नों का विनिश्चय करेगा और उस पर, ऐसे आधार अन्तर्विष्ट करने वाला अपना निर्णय देगा जिस पर ऐसा विनिश्चय आधारित है और न्यायालय की मुद्रा के अधीन और रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर सहित निर्णय की एक प्रति अपील अधिकरण को भेजी जाएगी, जो ऐसे आदेश पारित करेगा जैसे मामले को ऐसे निर्णय के अनुरूप निपटाने के लिए आवश्यक है।

उच्चतम न्यायालय को अपील

धारा 130-ड़ के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपील—

(क) धारा 130 के अधीन किए गए निर्देश में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से ऐसे मामले में हो सकेगी जिसमें स्वप्रेरणा से या निर्णय सुनाए जाने के ठीक पश्चात्, व्यक्ति पक्षकार द्वारा या उसकी ओर से किए गए मौखिक आवेदन पर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता है कि वह मामला उच्चतम न्यायालय के अधीन करने के लिए उपयुक्त है, या

(ख) अपील अधिकरण द्वारा पारित ऐसे आदेश से हो सकेगी जो अन्य बातों के साथ-साथ निर्धारण के प्रयोजनों के लिए सीमाशुल्क की दर या माल के मूल्य के प्रश्न के अवधारण के संबंध में है।

अन्तिम उपबंध में प्रत्येक अपील जो नियत दिन के ठीक पहले बोर्ड के समक्ष धारा 128 के अधीन, जैसी कि वह उस दिन के ठीक पहले थी, लम्बित थी और ऐसी अपील से उद्भूत या संसक्त कोई मामला जो इस प्रकार संबंधित है, उस दिन अपील अधिकरण को अंतरित हो जाएगा।

3.19 केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम, 1944

इस अधिनियम के अधीन, वस्तुओं के अधिहरण और शास्तियों के अधिरोपण का न्यायनिर्णयन निम्नलिखित रूप में किया जाता है :—

धारा 33 के अधीन, जहां इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार कोई वस्तु अधितरणीय है या कोई व्यक्ति शास्ति का दायी है वहां —

(क) केन्द्रीय सीमाशुल्क कलक्टर द्वारा बिना किसी सीमा के,

(ख) केन्द्रीय उत्पादशुल्क सहायक कलक्टर द्वारा ऐसे माल का जिसका मूल्य पांच सौ रुपये से अधिक नहीं अधिहरण करके और दो सौ पचास रुपये से अनधिक शास्ति का अधिरोपण करके अधिहरण या शास्ति न्यायनिर्णीत कर सकेगा।

केन्द्रीय उत्पादशुल्क तथा सीमाशुल्क बोर्ड ऊपर दर्शायी गयी शक्तियों की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगा।

इस अधिनियम तथा उसके अधीन बनाए गए विनियमों में माफी योग्य वस्तुओं के मूल्यांकन और वर्गीकरण तथा अन्य प्रासंगिक मामलों का प्रावधान है।

अधिनियम की धारा 35 के अधीन कोई व्यक्ति जो अधिनियम में उपबंधित मामलों के अतिरिक्त वर्गीकरण तथा मूल्यांकन जैसे महत्वपूर्ण मामलों में केन्द्रीय उत्पादशुल्क कलक्टर से निम्नपंक्ति के किसी केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिकारी द्वारा इस अधिनियम के अधीन दिए गए किसी विनिश्चय या आदेश से व्यथित है केन्द्रीय उत्पादशुल्क कलक्टर/अपील (यहां इसके पश्चात् कलक्टर (अपील) के रूप में निर्देशित होगा) को अपील कर सकेगा। कलक्टर (अपील) ऐसी और जांच करने के बाद, जिस विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसकी पुष्टि, उसका उपान्तरण या उसे बातिल करते हुए ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे, अथवा उस मामले को ऐसे निदेशों के साथ जो वह ठीक समझे, यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त साक्ष्य लेकर, नए सिरे से, यथास्थिति, न्यायनिर्णयन या विनिश्चय के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को पुनः निर्दिष्ट कर सकेगा। अपील के निपटाए जाने पर अपने द्वारा पारित आदेश अपीलार्थी, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी और केन्द्रीय उत्पादशुल्क कलक्टर को संसूचित करेगा।

अपील अधिकरण को अपीलें

धारा 35ख के अधीन, कोई व्यक्ति जो निम्नलिखित आदेशों में से किसी से व्यथित है, ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा।

(क) केन्द्रीय उत्पादशुल्क कलक्टर द्वारा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के रूप में दिया गया विनिश्चय या आदेश,

(ख) धारा 35क के अधीन कलक्टर (अपील) द्वारा पारित आदेश, ,

(ग) धारा 35के अधीन, जैसी वह नियत दिन के ठीक पहले थी, केन्द्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम, 1963 के अधीन गठित केन्द्रीय उत्पादशुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड (इसके पश्चात् बोर्ड के रूप में निर्दिष्ट) या केन्द्रीय उत्पादशुल्क कलक्टर द्वारा दिया गया आदेश,

(घ) नियत दिन के पहले या पश्चात् धारा 35-क के अधीन जैसी वह उस दिन के ठीक पहले थी, बोर्ड या केन्द्रीय उत्पादशुल्क कलक्टर द्वारा पारित आदेश।

परन्तु यह कि अपील अधिकरण स्वविवेकानुसार खण्ड (ख) या खण्ड (ग) या खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आदेश की बाबत अपील ग्रहण करने से इंकार कर सकेगा, जहां

(एक) किसी विवादग्रस्त मामले में, जो ऐसे मामलों से भिन्न है, जहां निर्धारण के प्रयोजनों के लिए उत्पाद शुल्क की दर या माल के मूल्य के संबंध में किसी प्रश्न का अवधारण विवाद्य है या विवाद्य बातों में से एक है वहां अन्तर्वलित शुल्क का अन्तर या अन्तर्वलित शुल्क, या

(दो) ऐसे आदेश द्वारा अवधारित जुर्माने या शास्ति की रकम पचास हजार रुपये से अधिक नहीं है।

यदि केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर की यह राय है कि धारा 35 के अधीन, जैसी वह नियत दिन के ठीक पहले थी, केन्द्रीय उत्पादशुल्क अपील कलक्टर या कलक्टर (अपील) द्वारा धारा 35-क के अन्तर्गत पारित आदेश विधिमान्य या उचित नहीं है तो वह अपने द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिकारी को उस आदेश के विरुद्ध उसकी ओर से अपील अधिकरण को अपील करने का निदेश दे सकेगा।

अपील अधिकरण, अपील के पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, जिस विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसकी पुष्टि, उसका उपान्तरण या उसे बातिल करते हुए उस पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझता है, अथवा उस मामले के ऐसे निदेशों के अनुसार जो अपील अधिकरण उचित समझे और यदि आवश्यक हो, अतिरिक्त साक्ष्य लेने के पश्चात्, यथा स्थिति, नए सिरे से न्यायनिर्णयन या विनिश्चय के लिए उस प्राधिकारी को पुनः निर्दिष्ट कर सकेगा जिसने ऐसा विनिश्चय या आदेश दिया था।

तथ्यों से संबंधित प्रश्नों के बारे में अपील अधिकरण के विनिश्चय, धारा 35-ठ(ख) में उपबंधित मामलों के सिवाय, अन्तिम है। अपील अधिकरण इस धारा के अधीन पारित हर आदेश की प्रति केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर तथा अपील के अन्य पक्षकार को भेजेगा ।

धारा 35-ड़ के अधीन, बोर्ड, स्वप्रेरणा से, किसी ऐसी कार्यवाही का अभिलेख, जिसमें केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर ने न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के रूप में इस अधिनियम के अधीन कोई विनिश्चय या आदेश दिया है, ऐसे आदेश या विनिश्चय की वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए, मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है और आदेश द्वारा ऐसे कलक्टर को यह निदेश दे सकता है कि वह ऐसे विनिश्चय या आदेश से उद्भूत होने वाले ऐसे प्रश्नों का अवधारण कराने के लिए अपील अधिकरण का आवेदन करे जो बोर्ड द्वारा अपने आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

साथ की धारा 35-ड़ की उपधारा (2) के अधीन केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर को भी ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वह स्वप्रेरण से किसी ऐसी कार्यवाही का अभिलेख जिसमें उसके अधीनस्थ किसी न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ने इस अधिनियम के अधीन कोई विनिश्चय या आदेश दिया है, ऐसे विनिश्चय या आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है और आदेश से उद्भूत होने वाले ऐसे प्रश्नों का अवधारण कराने के लिए कलक्टर (अपील) को आवेदन करे जो केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर द्वारा अपने आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं। ऐसे आवेदनों को न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध की गई अपील समझा जाएगा।

उच्च न्यायालय को मामले का कथन

धारा 35-छ के अन्तर्गत केन्द्रीय सीमाशुल्क कलक्टर या दूसरा पक्षकार उस तारीख से साठ दिन के भीतर, जिसको उस पर धारा 35 ग अधीन आदेश (जो ऐसा आदेश नहीं है जो अन्य बातों के साथ-साथ निर्धारण के प्रयोजनों के लिए उत्पाद-शुल्क की दर या माल के मूल्य से संबंधित प्रश्न के अवधारण से संबंधित है) की सूचना की तामील की जाती है। विहित प्ररूप में आवेदन द्वारा अपील अधिकरण से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह ऐसे आदेश से उद्भूत होने वाले किसी विधि के प्रश्न का निर्देश उच्च न्यायालय को करे और अपील अधिकरण, यदि इससे सहमत है, मामले का कथन तैयार करेगा और उसे उच्च न्यायालय को निर्दिष्ट करेगा। यदि अपील अधिकरण मामले का कथन करने से इस आधार पर इंकार करता है कि कोई विधि का प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है तो केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर या दूसरा पक्षकार उच्च न्यायालय को आवेदन कर सकेगा और यदि उच्च न्यायालय अपील अधिकरण के विनिश्चय के सही होने से सन्तुष्ट नहीं है तो वह अपील अधिकरण से उस मामले का कथन करने की ओर उसका निर्देश करने की अपेक्षा कर सकेगा और ऐसे किसी अध्यादेश की प्राप्ति पर, अपील अधिकरण तदनुसार मामले का कथन करेगा और उसे निर्दिष्ट करेगा।

धारा 35 ज के अन्तर्गत, यदि उपर्युक्त धारा के अधीन किए गए आवेदन पर अपील अधिकरण की यह राय है कि विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न की बाबत उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में विरोध होने के कारण यह समीचीन है कि निर्देश सीधे उच्चतम न्यायालय को किया जाए तो अपील अधिकरण मामले का कथन तैयार कर सकेगा और अपने अध्यक्ष के माध्यम से उसका निर्देश सीधे उच्चतम न्यायालय को कर सकेगा। यदि उच्च

न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का समाधान इस बात के संबंध में नहीं हुआ है कि उसको निर्दिष्ट मामले में कथन इतने पर्याप्त हैं कि वह उनके द्वारा उठाए गए प्रश्नों का अवधारण कर सके तो न्यायालय उसे अपील अधिकरण को, उसमें ऐसे परिवर्धन या परिवर्तन करने के प्रयोजन के लिए, जैसे वह उस निमित्त निर्दिष्ट करे, लौटा सकेगा।

धारा 35-ट के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय ऐसा कोई मामला सुनने पर, उसमें उठाए गए विधि के प्रश्नों का विनिश्चय करेगा और उस पर, ऐसे आधार अन्तर्विष्ट करने वाला अपना निर्णय देगा जिन पर ऐसा विनिश्चय आधारित है और निर्णय की एक प्रति अधिकरण के रजिस्ट्रार को भेजी जाएगी। तब अपील अधिकरण ऐसे आदेश पारित करेगा जैसे मामले को ऐसे निर्णय के अनुरूप निपटाने के लिए आवश्यक है।

उच्चतम न्यायालय को अपील

धारा 35-ठ के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपील—

(क) धारा 35-छ के अधीन किए गए निर्देश में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से ऐसे मामले में हो सकेगी जिसमें स्वप्रेरण से या निर्णय सुनाए जाने के ठीक पश्चात्, व्यथित पक्षकार द्वारा या उसकी ओर से किए गए मौखिक आवेदन पर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता है कि वह मामला उच्चतम न्यायालय को अपील के लिए उपयुक्त है, या

(ख) अपील अधिकरण द्वारा पारित ऐसे आदेश से हो सकेगी जो अन्य बातों के साथ-साथ निर्धारण के प्रयोजनों के लिए उत्पाद-शुल्क की दर या माल के मूल्य से संबंधित प्रश्न के अवधारण के संबंध में है।

3.20 स्वर्ण (नियंत्रण) अधिनियम, 1968 के अधीन न्यायनिर्णयन प्रक्रिया

स्वर्ण (नियंत्रण) अधिनियम, 1968 में न्याय निर्णयन तंत्र की व्यवस्था लगभग उसी पद्धति पर है जैसी कि सीमाशुल्क अधिनियम और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम, 1944 से संबंधित मामलों में ऊपर चर्चा की गई है। अधिक विस्तार से बचने की दृष्टि से इन्हें यहां पुनःउद्धृत नहीं किया जा रहा है।

यूरोपीय देशों में प्रशासनिक विधि प्रणाली का अवलोकन करने से पता चलता है कि अधिकरणों के माध्यम से न्याय प्रशासन से विदेशी इस प्रणाली से संतुष्ट है। अतः देश में अधिकरण प्रणाली को समाप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता परन्तु हमें सुधारात्मक उपाय खोजने होंगे ताकि अधिकरण प्रणाली से न्याय प्राप्त करने में आने वाली समस्याओं को दूर किया जा सके।

अध्याय-चार

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण

4.1 हम सर्वप्रथम प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन गठित प्रशासनिक अधिकरण पर विचार करेंगे।

4.2 **केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण का गठन :—**

वर्ष 1976 में संविधान में 42वें संशोधन भाग चौदह क जिसमें अनुच्छेद 323क और 323ख अन्तर्विष्ट है, को भारत के संविधान में जोड़ा गया जिसके द्वारा संसद तथा राज्य विधानमंडलों को सेवा संबंधी मामलों तथा कतिपय अन्य मामलों के लिए प्रशासनिक अधिकरण गठित करने का अधिकार दिया गया है। वर्ष 1985 में संसद ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम पारित किया। इसके कुछ संगत प्रावधानों पर नीचे चर्चा की जा रही है। अधिनियम का अध्याय दो अधिकरणों तथा उनकी न्यायपीठों की स्थापना से संबंधित है। धारा 4 में स्थापना का प्रावधान है और धारा 5 में अधिकरणों तथा उनकी न्यायपीठों की संरचना का उल्लेख है। धारा 6 में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों के लिए अर्हताएं निर्धारित की गई हैं। जहां तक अध्यक्ष का प्रश्न है उपधारा (1) के अनुसार कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह—

(क) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो; अथवा

(ख) कम से कम दो वर्ष तक उपाध्यक्ष का पद धारण कर चुका हो;

(ग) (1987 के अधिनियम संख्या 51 द्वारा लोप किया गया)।

उपाध्यक्ष के लिए अर्हता निर्धारित करने वाली उपधारा (2) में प्रावधान किया गया है कि कोई व्यक्ति उपाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह—

(क) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है अथवा होने के लिए अर्हित है (वर्ष 1987 के अधिनियम संख्या 51 की धारा 3(ख) द्वारा जोड़ा गया); अथवा

(ख) कम से कम दो वर्ष तक भारत सरकार के सचिव का पद अथवा केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई अन्य पद धारण कर चुका है जिसका वेतनमान भारत सरकार के सचिव के वेतनमान से कम नहीं है; अथवा

(खख) कम से कम पांच वर्ष तक भारत सरकार के अपर सचिव का पद अथवा केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई अन्य पद धारण कर चुका है जिसका वेतनमान भारत सरकार के अपर सचिव के वेतनमान से कम नहीं है; अथवा

(ग) कम से कम तीन वर्ष की अवधि तक (न्यायिक सदस्य या प्रशासनिक सदस्य) के रूप में पद धारण कर चुका है।

उपधारा (3) में न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता निर्धारित की गई है। कोई व्यक्ति न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह—

(क) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, रहा है या होने के लिए अर्हित है; अथवा

(ख) भारतीय विधि सेवा का सदस्य रह चुका है और जिसने उस सेवा की श्रेणी-I का पद कम से कम तीन वर्ष तक धारण किया है।

उपधारा (3-क) में प्रशासनिक सदस्य की नियुक्ति के लिए अर्हता का प्रावधान है और यह निर्धारित किया गया है कि ऐसा व्यक्ति (क) कम से कम दो वर्ष तक भारत सरकार के अपर सचिव के पद पर रहा हो अथवा केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार के अधीन ऐसे किसी पद पर रहा है जिसका वेतनमान भारत सरकार के अपर सचिव के वेतनमान से कम नहीं है, अथवा (ख) कम से कम तीन वर्ष तक भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद अथवा केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार के अधीन ऐसे किसी पद पर रहा है जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से कम नहीं है, और दोनों दशाओं में उसके पास पर्याप्त प्रशासनिक अनुभव है।

अधिनियम की धारा 8 में पदावधि निर्धारित की गई है और यह प्रावधान किया गया है कि अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की पदावधि उस तारीख से जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है, पांच वर्ष की अवधि तक, उस हैसियत में पद धारण करेगा, किन्तु पांच वर्ष की और अवधि के लिए पुनः नियुक्ति का पात्र होगा। धारा 8 के परन्तुक में यह व्यवस्था है कि कोई भी अध्यक्ष, उपाध्यक्ष अथवा अन्य सदस्य, अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की दशा में पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् उस हैसियत में पद धारण नहीं करेंगे।

अधिनियम के अध्याय—तीन में अधिकरणों के अधिकार क्षेत्र, शक्तियां और प्राधिकारों की चर्चा की गई है। जहां धारा 14 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरणों की अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार के बारे में है, धारा 15 में राज्य प्रशासनिक अधिकरणों के बारे में चर्चा की गई है और धारा 16 में संयुक्त प्रशासनिक अधिकरणों के बारे में है।

धारा 14 में दी गई व्यवस्था को नीचे उद्धृत करना आवश्यक है :

"14. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार—(1) इस अधिनियम में जैसा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है उसके सिवाय, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, नियत दिन से ही ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग जो उस तारीख से ठीक पहले (उच्चतम न्यायालय के सिवाय) सभी न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित के संबंध में प्रयोक्तव्य है, अर्थात् :—

(क) किसी अखिल भारतीय सेवा में या संघ की किसी सिविल सेवा में या संघ के अधीन किसी सिविल पद पर या रक्षा से संबंधित या रक्षा सेवाओं के किसी पद पर, जो दोनों दशाओं में किसी सिविलियन द्वारा भरा गया कोई पद है, भर्ती और भर्ती से संबंधित विषय;

(ख) सेवा संबंधी ऐसे सभी विषय, जो—

(i) किसी अखिल भारतीय सेवा के किसी सदस्य से, या

(ii) किसी ऐसे व्यक्ति से (जो किसी अखिल भारतीय सेवा का सदस्य या खण्ड (ग) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति नहीं है) जो संघ की किसी सिविल सेवा में या संघ के अधीन किसी सिविल पद पर नियुक्ति किया जाता है, या

(iii) किसी ऐसे सिविलियन से (जो किसी अखिल भारतीय सेवा का सदस्य या खण्ड (ग) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति नहीं है) जो रक्षा सेवाओं में के या रक्षा से संबंधित किसी पद पर नियुक्त किया जाता है, सम्बद्ध है और जो संघ के अथवा किसी राज्य के अथवा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रणाधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम (अथवा सोसायटी) के कार्यकलापों से संबंधित ऐसे सदस्य, व्यक्ति या सिविलियन की सेवा के संबंध में है।

(ग) सेवा संबंधी ऐसे सभी विषय जो संघ के कार्यकलापों से संबंधित सेवा के संबंध में किसी ऐसे व्यक्ति से सम्बद्ध है जो खंड (ख) के उपखंड (ii) या उपखण्ड (iii) में निर्दिष्ट किसी सेवा में या पद पर नियुक्त किया जाता है और जो ऐसा व्यक्ति है जिसकी सेवाएं ऐसी नियुक्ति के लिए किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या किसी निगम (या सोसाइटी) या स्थानीय या अन्य निकाय द्वारा केन्द्रीय सरकार को सौंप दी गई है।

(स्पष्टीकरण—शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस उपधारा में "संघ" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उनके अन्तर्गत, संघ राज्यक्षेत्र के प्रति निर्देश भी है)।

(2) केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा, उपधारा (3) के उपबंध भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन निगमों (या सोसाइटियों) को जो किसी राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन कोई स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम (या सोसाइटी) नहीं है, ऐसी तारीख से लागू कर सकेगी जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए :

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम में परिकल्पित स्कीम के संक्रमण को सुकर बनाने के प्रयोजन से ऐसा करना समीचीन समझती है तो स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों या निगमों (या सोसाइटियों) के भिन्न-भिन्न वर्गों के या किसी वर्ग के अधीन भिन्न-भिन्न प्रवर्गों के संबंध में इस उपधारा के अधीन भिन्न-भिन्न तारीखें इस प्रकार विनिर्दिष्ट की जा सकेंगी।

(3) इस अधिनियम में जैसा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है उसके सिवाय, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ऐसी तारीख से ही जिससे इस उपधारा के उपबंध किसी स्थानीय या किसी अन्य प्राधिकारी या निगम (या सोसाइटी) को लागू होते हैं, ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का भी प्रयोग करेगा जो उस तारीख से ठीक पहले (उच्चतम न्यायालय के सिवाय) सभी न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित के संबंध में प्रयोक्तव्य है, अर्थात् :

(क) ऐसे स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम (या सोसाइटी) के कार्यकलापों से संबंधित किसी सेवा या पद पर भर्ती और भर्ती से संबंधित विषय;

(ख) सेवा संबंधी ऐसे सभी विषय, जो उपधारा (1) के खण्ड (क) या खण्ड (ख) में निर्दिष्ट व्यक्ति से भिन्न ऐसे किसी व्यक्ति के संबंध में है जो ऐसे स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम (या सोसाइटी) के कार्यकलापों से संबंधित किसी सेवा में या पद पर नियुक्त किया जाता है और जो ऐसे कार्यकलापों से संबंधित ऐसे व्यक्ति की सेवा के संबंध में है।

धारा 17 में अधिकरण को अवमान के लिए दंड देने की शक्ति प्रदान की गई है।

अध्याय-चार अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में है। धारा 19 में अन्तर्विष्ट प्रावधान नीचे उधृत किए जा रहे हैं।

"19. **अधिकरणों को आवेदन**—(1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति, जो किसी अधिकरण की अधिकारिता के भीतर किसी मामले से संबंधित किसी आदेश से व्यथित है, अपनी शिकायत को दूर कराने के लिए अधिकरण को आवेदन कर सकेगा।

स्पष्टीकरण—इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "आदेश" से ऐसा आदेश अभिप्रेत है जो—

(क) सरकार द्वारा अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी द्वारा अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण में के किसी निगम [या सोसाइटी] द्वारा किया जाता है; या

(ख) सरकार के अथवा खंड (क) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम [या सोसाइटी] के किसी अधिकारी, समिति या अन्य निकाय या अभिकरण द्वारा किया जाता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन ऐसे प्ररूप में होगा और उसके साथ दस्तावेजों या अन्य साक्ष्य और ऐसा आवेदन फाइल करने के संबंध में ऐसी फीस (यदि कोई हो, जो एक सौ रुपए से अधिक नहीं होगी) और, यथास्थिति [आदेशिकाओं की तामील या निष्पादन के लिए ऐसी अन्य फीस होगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए।]

[(3) उपधारा (1) के अधीन आवेदन की प्राप्ति पर, यदि अधिकरण का, ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह ठीक समझे, यह समाधान हो जाता है कि आवेदन उसके द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए ठीक मामला है तो वह आवेदन को ग्रहण कर सकेगा किन्तु यदि अधिकरण का इस प्रकार समाधान नहीं होता है तो वह, आवेदन को, उसके लिए जो कारण हैं उन्हें लेखबद्ध करने के पश्चात्, संक्षेपतः नामंजूर कर सकेगा।]

(4) जहां कोई आवेदन उपधारा (3) के अधीन किसी अधिकरण द्वारा ग्रहण कर लिया गया हैं वहां ऐसे आवेदन की विषय-वस्तु से संबंधित शिकायतों को दूर कराने के बारे में सुसंगत सेवा नियमों के अधीन ऐसी प्रत्येक कार्यवाही का जो आवेदन के ऐसे ग्रहण किए जाने के पूर्व लम्बित हैं, उपशमन हो जाएगा और जैसा अधिकरण निर्दिष्ट करे उसके सिवाय, ऐसे विषय के सम्बन्ध में इसके पश्चात् कोई अपील या अभ्यावेदन ऐसे नियमों के अधीन ग्रहण नहीं किया जाएगा।"

धारा 20 में यह उपबंधित है कि अधिकरण द्वारा आवेदन सामान्यतया तब तक स्वीकार नहीं किए जाएंगे जब तक अन्य उपलब्ध उपचारों का उपयोग न कर लिया गया हो। धारा 21 में समय सीमा निर्धारित की गई है जिसके भीतर अधिकरण द्वारा आवेदन स्वीकार किया जा सकता है। धारा 22 में यह उपबंध है कि अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा निर्धारित प्रक्रिया से बाध्य नहीं होगा अपितु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों और इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियमों से मार्ग निर्देशन प्राप्त करेगा। अधिकरण को अपनी प्रक्रियाओं के विनियमन की शक्ति प्राप्त होगी और वह अपनी जांच का स्थान तथा समय निश्चित कर सकेगा तथा सार्वजनिक रूप में अथवा असार्वजनिक रूप में बैठक करने का निर्णय लेने का अधिकारी होगा। अधिकरण अपने को किए गए प्रत्येक आवेदन का विनिश्चय यथासंभव शीघ्रता से करेगा और सामान्यतया प्रत्येक आवेदन का विनिश्चय दस्तावेजों और लिखित अभ्यावेदनों का परिशीलन करके और ऐसे मौखिक तर्क को, जो प्रस्तुत किया जाए, सुनवाई करके किया जाएगा।

धारा 24 में अन्तरिम आदेश करने के बारे में शर्तें निर्धारित की गई हैं।

धारा 27 अधिकरण के आदेशों का निष्पादन करने से संबंधित है और धारा 28 संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय के सिवाय अन्य न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन से संबंधित है तथापि, अधिकरणों के निर्णय अन्तिम हैं अथवा नहीं यह प्रश्न उपर्युक्त **एल. चन्द्र कुमार** मामले के निर्णय को ध्यान में रखते हुए संबंधित उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका के अन्तर्गत चुनौती के लिए खुला है।

4.3 **एल. चन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ** के मामले उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ की टिप्पणियां।

उच्चतम न्यायालय की सात न्यायधीशों की संविधान पीठ ने **एल. चन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ,** (1997) 3 सु.को. 261 मामले में अपना निर्णय घोषित कर दिया है। न्यायालय का सर्वसम्मत निर्णय मुख्य न्यायाधीश ए.एम. अहमदी द्वारा घोषित किया गया। निर्णय की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

(क) भारत के संविधान के अनुच्छेद 323-क के खण्ड 2(घ) और अनुच्छेद 323-ख के खण्ड 3 (घ) जिस सीमा तक क्रमशः अनुच्छेद 226, 227 और 136 के उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन का प्रावधान करते हैं इस आधार पर असंवैधानिक है कि उनसे संविधान के मूल ढांचे का अतिक्रमण होता है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उपर्युक्त अनुच्छेदों द्वारा उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय को प्रदान की गई न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति, संविधान के मूल ढांचे के अन्तर्गत आती है और इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता और क्योंकि उपर्युक्त अनुच्छेदों को पुनःस्थापित करने वाला संविधान का 42वां संशोधन भारती के पश्चात् की अधिनियमिति है इसलिए जहां तक इससे संविधान के मूल ढांचे का अतिक्रमण होता है वहां तक

यह अवैध और अप्रवर्तनीय है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 28 तथा किसी अन्य अधिनियमिति के अन्य खण्ड जिनसे उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन की व्यवस्था होती है समान रूप से अवैध और निष्प्रभावी है।

(ख) जबकि उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का निराकरण नहीं किया जा सकता, विधानमंडल न्यायालयों और अधिकरणों के गठन कर सकते हैं और न्यायिक शक्तियां प्रदान कर सकते हैं परन्तु ऐसी शक्तियां संविधान के अनुच्छेद 226, 227 तथा 32 द्वारा उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय को प्रदान की गयी शक्तियों की अनुपूरक ही होगी। उपर्युक्त अनुच्छेदों के अन्तर्गत गठित अधिकरण, सांविधिक उपबंधों और नियमों के संवैधानिक वैधता पर, इस अपवाद के साथ अपना निर्णय देने में सक्षम है कि वे उस अधिनियम के प्रावधानों की वैधता की न तो जांच कर सकते हैं और न ही अपना निर्णय दे सकते जिनके अन्तर्गत उनका गठन किया गया है।

(ग) अनुच्छेद 323-क तथा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अन्तर्गत गठित किए गए प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णय उस उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ की समीक्षा के अध्यधीन रहेंगे जिस उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में वह अधिकरण स्थापित है। अधिकरण प्रथम बार के न्यायालय के रूप में कार्य करते रहेंगे और पक्षकार अपनी सेवा शर्तों से संबंधित मामलों में, सिवाय उन मामलों के जहां उस अधिनियम की ही संवैधानिकता विवादास्पद हो जिसके अन्तर्गत अधिकरण विशेष का गठन किया गया हो, सीधे उच्च न्यायालय में नहीं जा सकेंगे।

(घ) न्यायिक तथा अर्ध-न्यायिक अधिकरणों की अवधारणा का ठोस आधार है, यद्यपि ऐसा हो सकता है कि विभिन्न अधिनियमितियों के अधीन गठित अधिकरणों से आशानुकूल परिणाम प्राप्त न हुए हों। इन्हें समाप्त करना कोई उपचार नहीं है अपितु उनमें सुधार करने में है ताकि वे न्याय प्रदान करने वाली प्रणाली के प्रभावी अंग बन सकें।

(ङ) प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में प्रशासनिक सदस्यों के नियुक्ति का प्रावधान सिद्धान्त रूप में गलत नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत, प्रशासनिक सदस्य अधिकरण के निर्णय को प्रभावी, न्यायोचित तथा संतुलित बनाये रखने में कतिपय आदान और विशेष ज्ञान का योगदान करते हैं।

(च) प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील नहीं की जा सकेगी। पक्षकारों को संबंधित उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ में जाना होगा। पक्षकार उच्च न्यायालय के निर्णय पर, यदि उसे ऐसा परामर्श दिया जाता है, संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय में जा सकेगा।

(छ) यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 323-क और 323-ख के अधीन गठित सभी अधिकरणों के प्रशासन के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण बनाया जाना चाहिए। ऐसे सभी अधिकरणों को एकलशीर्ष अभिकरण के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए जो इन अधिकरणों के कार्य-करण का पर्यवेक्षण करने की स्थिति में हो। जब तक एक ऐसा केन्द्रीय स्वतंत्र अभिकरण नहीं बनाया जाता इन अधिकरणों के कार्यकरण का विधि मंत्रालय द्वारा पर्यवेक्षण किया जाना चाहिए। तथापि, विधि मंत्रालय, इन अधिकरणों के कार्यकरण की जांच करने के लिए एक स्वतंत्र पर्यवेक्षी निकाय नियुक्त कर सकता है।

(ज) जहां तक उपधारा (2) और धारा 5 (6) की पारस्परिक क्रियाशीलता का संबंध है, स्थिति यह है कि किसी ऐसे प्रश्न पर, जिसमें सांविधिक प्रावधान अथवा संविधान से संबंधित किसी नियम की व्याख्या अन्तर्ग्रस्त है, प्रशासनिक अधिकरण के एकल सदस्य द्वारा निर्णय नहीं किया जाएगा। ऐसे प्रश्नों से संबंधित सभी मामले कम से कम दो सदस्यीय जिनसे एक सदस्य न्यायिक सदस्य होगा, न्यायपीठ के सम्मुख रखे जाएंगे।

4.4 एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ, (1997) 3 सु. को. 261 के मामलों में की गयी अन्य संगत टिप्पणियां इस प्रकार हैं :—

(i) विधायी कार्यों पर न्यायिक पुनरीक्षा की संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों में और अनुचछेद 32 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में निहित है और यह संविधान का अभिन्न तथा विशिष्ट अंग है जिससे मिलकर संविधान का मूल ढांचा बना है। साधारणतया विधान की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करने की उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की इस शक्ति का अपवर्जन नहीं किया जा सकता। अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी न्यायालयों और अधिकरणों के निर्णयों का न्यायिक पर्यवेक्षण करने संबंधी उच्च न्यायालयों को प्राप्त शक्ति भी संविधान के मूलढांचे का ही अंग है। ऐसा इसलिए है कि ऐसी परिस्थिति में जहां उच्च न्यायालयों को अन्य सभी न्यायिक कृत्यों से विनिर्हित कर दिया जाता है संवैधानिक व्याख्या की शक्ति फिर भी उसमें निहित होती है।

अनुच्छेद 323-क का खंड 2 (घ) और अनुच्छेद 323-ख का खंड 3(च) जिस सीमा तक उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन करते हैं संविधान के अनुच्छेद 226/227 तथा 32 के अंतर्गत असंवैधानिक है।

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 28 तथा अनुच्छेद 323-क और 323-ख की प्रतिरक्षा में बनाए गए अधिकारिता का अपवर्जन करने वाले सभी खंड, उस सीमा तक असंवैधानिक है।

(ii) प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक पुनरीक्षा करने की शक्ति को सुरक्षित बनाए रखने के आवश्यक कारण है। जब संविधान निर्माताओं ने प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा करने की शक्ति उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालयों को प्रदान की थी तब उन्होंने इस दायित्व को प्रभावी रूप से वहन करने में सहायता करने के लिए अन्य सुरक्षोपाय सुनिश्चित कराये थे। उन्होंने अपेक्षा की थी कि इस शक्ति का उपयोग करने की कभी-कभी आवश्यकता पड़ेगी। तथापि, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दशाब्दियों में उच्च न्यायालयों में ऐसे मामलों की संख्या अभूतपूर्व रूप से बढ़ गई। संपत कुमार के मामले में निर्णय इसी पृष्ठभूमि में दिया गया। हम इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि जब इस न्यायालय की संविधानपीठ ने संपत कुमार के मामले में वैकल्पिक संस्थागत तंत्र के सिद्धांत को स्वीकार किया तब उनका प्रयास चिंताजनक वर्तमान स्थिति के लिए उपचार करना था और इस दृष्टि से उन्होंने जो दृष्टिकोण अपनाया था वह समय की मांग को देखते हुए अत्यन्त न्यायोचित था।

यह प्रत्यक्ष है और सर्वविदित तथ्य है कि विभिन्न अधिकरणों के कार्य निष्पादन आशानुकूल नहीं रहा है। तथापि इसका यह अर्थ निकालना कि उनके असंतोषजनक कार्यनिष्पादन का कारण उनके किसी मूल ठोस सिद्धांत पर आधारित न होना है, ठीक नहीं है। जिन कारणों से अधिकरणों का गठन किया गया, वे आज भी विद्यमान हैं। वास्तव में ये कारण आज के समय में और अधिक प्रबल हो गये हैं। हम कह चुके हैं कि हमारी संवैधानिक संरचना ऐसे अधिकरणों के गठन की अनुमति देती है। तथापि, उनके स्तर में सुधार लाने के लिए कठोर उपाय करने होंगे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उन्हें प्रदान की गई न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति के अनुपालन में वे संवैधानिक समीक्षा में खरे उतर सकें।

> ''पैरा ······· 78 ······· जो संवैधानिक सुरक्षोपाय उच्चतर न्यायपालिका के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं वे अधीनस्थ न्यायपालिका के न्यायाधीशों अथवा साधारण विधानों द्वारा बनाए गए अधिकरण के सदस्यों के लिए उपलब्ध नहीं हैं''

यद्यपि अधीनस्थ न्यायपालिका अथवा साधारण विधानों के अंतर्गत गठित अधिकरण, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय का अपवर्जन करके विधायी कार्य की न्यायिक पुनरीक्षा नहीं कर सकती फिर भी इस संबंध में प्रतिस्थापनात्मक भूमिका के विपरीत उनकी अनुपूरक भूमिका निभाने पर संवैधानिक निषेध नहीं है।

अधिकरण उन मामलों की सुनवाई करने में सक्षम है जिनमें सांविधिक उपबंधों की शक्तिमत्ता प्रश्नगत हो। वे उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय के स्थानापन्न के रूप में कार्य नहीं कर सकते। इस संबंध में उनका कार्य केवल अनुपूरक है और अधिकरणों के ऐसे सभी निर्णय उच्च न्यायालय की संबंधित खंड न्यायपीठ के सम्मुख संवीक्षाधीन होंगे।

अधिकरण की इस शक्ति का एक महत्वपूर्ण अपवाद है कि अधिकरण अपनी मूल विधि की शक्ति के बारे में किसी प्रश्न पर सुनवाई नहीं करेंगे। मामला सीधे संबंधित उच्च न्यायालय में ले जाया जा सकता है। इन अधिकरणों के अन्य सभी निर्णय, जो ऐसे मामलों में दिये गए हैं जिनमें उन्हें अपने मूल अधिनियम से विशेष रूप से न्यायनिर्णयन की शक्ति प्राप्त है, संबंधित उच्च न्यायालयों की खंड न्यायपीठों के सम्मुख संवीक्षाधीन होंगे। अधिकरण विधि के उन सभी क्षेत्रों में जिनके लिए उनका गठन हुआ है एक मात्र प्रथम न्यायालय के रूप में कार्य करते रहेंगे। वादियों को सर्वप्रथम सीधे अधिकरणों में जाना होगा। उन मामलों में भी जहां सांविधिक विधानों की शक्तिमत्ता को चुनौती दी गई हो (केवल ऐसे विधान के अतिरिक्त जिसके अंतर्गत अधिकरण विशेष का गठन किया गया है)।

इन अधिकरणों के अन्य सभी निर्णय, जो ऐसे मामलों में दिए गए जिनमें मूल अधिनियम के अधीन न्यायनिर्णयों की विशेषरूप से शक्ति प्राप्त है, संबंधित उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के सम्मुख संवीक्षाधीन होंगे।

एल. चन्द्र कुमार मामले के निर्णय पर कोई भी अपील संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत सीधे उच्चतम न्यायालय में दायर नहीं की जा सकती है अपितु पीड़ित पक्षकार संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायापीठ के निर्णय के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय में जा सकता है।

प्रशासनिक सदस्यों की नियुक्ति संबंधी आवश्यकता के बारे में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया :—

''95 . . . . . . यह बताया गया कि केवल वही व्यक्ति जिन्हें न्यायिक अनुभव प्राप्त होगा अधिकरणों के लिए नियुक्त किए जाएंगे। प्रशासनिक अधिकरणों के मामलों में बताया गया है कि नियुक्त किए गए प्रशासनिक सदस्यों को विवादों के न्यायनिर्णयन में या तो बहुत कम अनुभव होता है या अनुभव होता ही नहीं। मालीमथ कमेटी ने नोट किया है कि कभी-कभी भारतीय पुलिस सेवा के

अधिकारियों को इन अधिकरणों में नियुक्त किया जाता है। अधिकरणों में जिस थोड़े से समय के लिए प्रशासनिक सदस्य रहते हैं इस अवधि में वे न्यायनिर्णयन में अनुभव प्राप्त नहीं कर पाते हैं और उन मामलों में जहां उन्हें योग्यता प्राप्त होती है यह योग्यता भी उन्हें अपने कार्यकाल के अंतिम चरण में प्राप्त होती है। इन्हीं कारणों से यह आग्रह किया गया है कि प्रशासनिक अधिकरणों में प्रशासनिक सदस्यों की नियुक्ति रोक दी जानी चाहिए। इस तर्क को स्वीकार करना बहुत कठिन है। यह स्मरण रखना चाहिए कि इन अधिकरणों का गठन इस अवधारणा पर आधारित है कि प्रशीक्षित प्रशासकों और न्यायिक अनुभव प्राप्त दोनों प्रकार के अनुभवी व्यक्तियों से गठित विशेषज्ञ निकाय अपने विशिष्ट ज्ञान के कारण शीघ्र तथा कुशल न्याय प्रदान करने में अधिक संपन्न होंगे। यह आशा की गई थी कि न्यायिक सदस्यों और मूलभूत अनुभव संपन्न सदस्यों को मिलाकर गठित किया निकाय इस प्रयोजन के लिए अति उत्तम सिद्ध होगा। यह मानने से कि अधिकरण में केवल न्यायिक सदस्य होने चाहिए उक्त सिद्धांत के मूल आधार को आघात पहुंचेगा जिसके अनुपालन में इन अधिकरणों को गठन किया गया है। क्योंकि चयन समिति भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मानोनीत उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश की अध्यक्षता में गठित है, हमें विश्वास है कि समिति यह सुनिश्चित करने के लिए सावधान रहेगी कि प्रशासनिक सदस्य उन व्यक्तियों में से ही चुने जाऐंगे जिन्हें ऐसे मामलों में कार्यवाही करने के लिए अनुभव प्राप्त हैं।''

(3) उच्चतम न्यायालय ने अधिकरणों के लिए नियुक्ति के संबंध में परिवर्तन करने तथा एक स्वतंत्र निकाय या प्राधिकरण द्वारा उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता पर बल दिया है। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है :—

> ''96 . . . . . इस समय स्थिति यह है कि विभिन्न अधिनियमों के आधीन गठित विभिन्न अधिकरण केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विभिन्न प्रशासनिक विभागों द्वारा शासित हैं। यह समस्या इस तथ्य से और भी जटिल हो जाती है कि कुछ अधिकरण केन्द्रीय विधानों के अनुपालन में और कुछ राज्यों के विधानों के अनुपालन में गठित किए गए हैं तथापि, संसदीय विधानों के अनुपालन में गठित अधिकरणों में भी प्रशासन के मामले में एकरूपता नहीं है। हमारा यह विचार है कि जब तक ऐसे सभी अधिकरणों के प्रशासन के लिए एक पूर्णतया स्वतंत्र अधिकरण गठित नहीं किया जाता तब तक यह वांछनीय है कि ये सभी अधिकरण जहां तक भी संभव हो सके, एक शीर्षस्थ मंत्रालय के अधीन रहने चाहिए जो इन अधिकरणों कार्यकरण की समीक्षा कर सके। अनेकों कारणोंवश यह मंत्रालय विधि मंत्रालय होना चाहिए। मंत्रालय इन अधिकरणों के कार्यकरण का पर्यवेक्षण करने के लिए अपनी ओर से एक स्वतंत्र पर्यवेक्षी निकाय गठित कर सकता है। इससे यह सुनश्चित होगा कि यदि किन्हीं कारणों से अधिकरण का प्रेसीडेंट अथवा चेयरपर्सन अधिकरणों के कार्यकरण में पर्याप्त रुचि नहीं ले पाता है तो समस्त प्रणाली शिथिल नहीं होगी और न्याय मांगने वाले का अहित नहीं होगा। **हमारे विचार में एकल शीर्ष संगठन (सिंगल अम्ब्रेला सिस्टम) बनाकर वर्तमान प्रणाली के बहुत से दोष दूर किये जा सकते हैं। यदि आवश्यकता पड़ी तो केन्द्र तथा राज्य स्तर पर पृथक-पृथक शीर्ष संगठन बनाए जा सकते हैं।** इस प्रकार के पर्यवेक्षी प्राधिकरण को यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि ऐसे सभी अधिकरणों के सदस्यों की स्वतंत्रता अक्षुण बनी रहे। **उस सीमा तक अधिकरणों के सदस्यों के चयन की प्रक्रिया,** अधिकरणों के कार्यकरण के लिए जिस प्रकार से धनराशि नियत की जाती है तथा **अन्य सभी परिणामात्मक विवरणों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाएगा।**
>
> (बल दिया गया)।

उच्चतम न्यायालय ने महसूस किया कि जिन लोगों को इस संबंध में नीति बनाने का दायित्व सौंपा जाए उनके द्वारा इन सुझावों पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

> ''97 अधिकरणों के लिए नियुक्ति तथा उनके प्रशासनिक कार्यों के पर्यवेक्षण के संबंध में हमने जो सुझाव दिए हैं उन पर, उन लोगों द्वारा जिन्हें इस संबंध में नीति बनाने का दायित्व सौंपा जाए, विस्तार से विचार किए जाने की आवश्यकता है। यह निकाय इस बारे में एल.सी.आई. तथा मालीमथ कमेटी जैसे विशेषज्ञ निकायों की टिप्पणियों पर भी ध्यान देगा। अत: हम सिफारिश करते हैं कि भारत सरकार इस संबंध में सभी संबंधित पक्षों से परामर्श करके कार्यवाही आरम्भ करे और इन सभी अधिकरणों को **एक शीर्ष विभाग के अधीन रखें विधायी विभाग के अधीन रखना वांछनीय होगा।**
>
> (बल दिया गया)

(4) उच्चतम न्यायालय ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 5 के अधीन प्रावधान को वैध ठहराया है क्योंकि जहां किसी सांविधिक प्रावधान की व्याख्या का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है अथवा संविधान से संबंधित नियम का प्रश्न प्रशासनिक प्राधिकरण की एकल सदस्यीय न्यायपीठ द्वारा विचार करने के लिए उठाया जाता है, धारा 5(ग) के प्रावधान स्वमेव लागू हो जाते हैं और चेयरमैन अथवा संबंधित सदस्य, मामले कम से कम दो सदस्यीय, जिनमें से एक न्यायिक सदस्य होगा, न्यायपीठ को निर्दिष्ट करेगा। इससे यह सुनिश्चित हो जाएगा कि सांविधिक प्रावधान अथवा नियम की शक्ति से संबंधित प्रश्न एकल सदस्यीय न्यायपीठ अथवा इस प्रकार की न्यायपीठ जिसमें न्यायिक सदस्य न हो न्यायनिर्णय के लिए कभी नहीं उठेगा।

4.5 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 (भारत के संविधान का अनुच्छेद 323-क) के अधीन गठित प्रशासनिक अधिकरण।

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 ने, इसके अधीन गठित अधिकरणों के अधिकार क्षेत्र में आने वाले मामलों पर, उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन किया है जैसाकि संविधान के अनुच्छेद 323-क के खण्ड 2(घ) के अंतर्गत अवधारणा की गई है। एल. चन्द्र कुमार के मामले में निर्णय आने तक प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णयों को उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया जा सकता था। प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णय से पीड़ित पक्षों को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस तथ्य के बावजूद भी कि अधिकरण का निर्णय एक सदस्यीय पीठ का है, सीधे उच्चतम न्यायालय में जाना पड़ता था। इस स्थिति की पुष्टि उच्चतम न्यायालय ने भी एस.पी. सम्पत कुमार बनाम भारत सरकार (1987) । सु.को. 124 मामले में कर दी थी। परन्तु एल. चन्द्र कुमार के मामले में एक बड़ी संविधानपीठ द्वारा बाद में दिए गए निर्णय ने उपर्युक्त स्थिति में पर्याप्त तथा गुणात्मक परिवर्तन कर दिया जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है। बाद में इस निर्णय से इन अधिकरणों के स्तर में भी आमूल परिवर्तन हुआ है। अब ये अधिकरण उच्च न्यायालय के अधीन हो गए हैं जो इस तथ्य से प्रकट हो जाता है कि अब इन अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में रिट दायर की जा सकती है। अब यह उच्च न्यायालय की वैकल्पिक व्यवस्था नहीं रह गई है परन्तु एक ऐसी व्यवस्था बन गई है जिसमें अधिकरणों के निर्णयों की उच्च न्यायालय, खंड न्यायपीठ द्वारा समीक्षा की जा सकती है। इस स्थिति को देखते हुए, कर्नाटक उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश श्री शिवशंकर महने, जिन्हें कर्नाटक राज्य प्रशासनिक अधिकरण का चेयरमैन नियुक्त किया गया था, एल. चन्द्रकुमार के मामले में निर्णय आने पर यह कहते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था कि उक्त निर्णय में अधिकरण की स्थिति और स्तर गिरा दिया है अत: वह राज्य प्रशासनिक अधिकरण के चेयरमैन के रूप में कार्य नहीं कर सकेंगे। प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की संविधान के अनुच्छेद 323-क और 323-ख से संबंधित कतिपय खंडों को अवैध ठहराते हुए उच्चतम न्यायालय ने उस सृदृढ़ सिद्धांत की पुष्टि भी की है जिसके आधार पर इन प्रशासनिक अधिकरणों का सृजन किया गया। उच्चतम न्यायालय के इस तर्क से असहमति व्यक्त की कि इन अधिकरणों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि वे अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में प्रभावी सिद्ध नहीं हुए हैं और उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहे हैं जिनके लिए इनका गठन किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिमत भी व्यक्त किया कि यद्यपि कि इन अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की जा सकती है फिर भी ये, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के प्रावधानों के अतिरिक्त जिनके अंतर्गत इनका गठन किया गया है, सांविधिक उपबंधों की संवैधानिक वैधता के बारे में निर्णय करने के लिए सक्षम है। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को भी रद्द कर दिया है कि इन अधिकरणों में तकनीकी/प्रशासनिक विशेषज्ञ नहीं होने चाहिए। उनका कहना है कि गैर-न्यायिक सदस्य ऐसा आदान उपलब्ध कराते हैं जो न्यायिक सदस्यों का उपलब्ध नहीं होता।

उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त निर्देश को ध्यान में रखते हुए, भारत के विधि आयोग के लिए इन अधिकरणों के कार्यकरण के बारे में किन्हीं ठोस उपायों का सुझाव देना अथवा सिफारिशें करने की कोई गुंजाइश नही रह जाती है इस पर भी कुछ क्षेत्रों के बारे में निम्नलिखित रूप में विचार किया जा सकता है। किया जा रहा है :—

(क) प्रशासनिक अधिकरणों की कार्यकुशलता में सुधार करने की दृष्टि से, सेवानिवृत अथवा सेवानिवृत होने वाले जिला न्यायाधीशों को न्यायिक सदस्यों के रूप में नियुक्त करने की वर्तमान प्रक्रिया पूर्णतया संतोषजनक नहीं है। ये जिला न्यायाधीश अपनी न्यायिक सेवाकाल के दौरान सेवा संबंधी मामलों के बारे में कार्यवाही नहीं करते हैं और क्योंकि उन्हें उनकी सेवा अवधि के अंतिम चरण में नियुक्त किया जाता है अत: विधि की इस शाखा अर्थात् सेवा संबंधी विधिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने का न तो समय ही शेष रहता है और नही उनकी इच्छा रहती है उन्हें दो या तीन वर्ष का समय मिलता है। यह भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि **अखिल भारतीय न्यायिक अधिकारी ऐसोसियेशन** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए अधीनस्थ न्यायपालिका में सेवानिवृत्ति आयु 60 वर्ष है। यह स्पष्ट है कि असंतोषप्रद रिकार्ड के कारण जिन्हें 58 वर्ष की आयु के पश्चात् सेवा में बने रहने की अनुमति नहीं दी जाती है उन्हें प्रशासनिक अधिकरण में सदस्य के रूप में नियुक्त करने पर न तो विचार किया जाएगा और न ही वे सदस्य नियुक्त किए जाते हैं। इस दृष्टि से 45 से 50 वर्ष की आयु के बीच के बार काउंसिल के सदस्यों को नियुक्त करने पर विचार किया जाना चाहिए जिन्हें अपनी बुद्धिमत्ता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि इन न्यायिक सदस्यों को प्रोत्साहन देने के विचार से उच्च न्यायालयों द्वारा (उन राज्यों के जहां के वे निवासी हैं) उनहें अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों के लिए सामान्यतया आरक्षित कोटे में उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के पदों पर नियुक्त करने पर विचार किया जाना चाहिए और यदि किन्हीं कारणों से ऐसा कर पाना व्यवहार्य नहीं पाया जाता है तो उनके मामलों पर अनुच्छेद 217 के उपखंड (ख) के खंड (2), स्पष्टीकरण (कक) और/अथवा उक्त खंडों में जोड़े गए खंड (ख) के साथ पठित, के अंतर्गत विचार किया जाना चाहिए। यदि इस प्रकार का आश्वासन पूरा किया जाता है तो ''बार'' के बहुत से सदस्य इन पदों के लिए आकर्षित होंगे। इससे कुशल सक्षम व्यक्ति, जिन्हें सेवा संबंधी मामलों में विशेष ज्ञान प्राप्त है, उच्च न्यायालयों के लिए उपलब्ध हो सकेंगे। प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 8 में तद्नुसार संशोधन किया जाना चाहिए। सदस्यों के मामले में, आरम्भिक कार्यकाल 10 वर्ष रखा जाना चाहिए। जिसे पांच वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है।

(ख) राज्य प्रशासनिक अधिकरणों में चेयरमैन के रूप में सेवानिवृत्त अथवा सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीशों को नियुक्त करने की प्रक्रिया अधिक सफल सिद्ध नहीं हुई है क्योंकि इन पदों के लिए सेवानिवृति आयु 65 वर्ष है, इन पदों पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों को तीन वर्ष और कभी-कभी इससे भी कम समय का कार्यकाल मिल पाता है। अधिक उपयुक्त होगा यदि उच्च न्यायालयों के उन न्यायाधीशों को, जिनकी सेवानिवृत्ति में कम से कम एक वर्ष का समय शेष रहता है, इन पदों पर नियुक्त करने पर विचार किया जाए। इस प्रकार उन्हें चार वर्ष का कार्यकाल मिल जाएगा जिससे उन्हें अपने पर स्थिर होने के लिए पर्याप्त समय मिल जाएगा और वे अच्छा कार्य कर पायेंगे। साधारण रूप में, कोई प्रशासनिक सदस्य केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के उपाध्यक्ष पद पर अथवा राज्य प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

(ग) उच्च न्यायालय में प्रशासनिक अधिकरण के आदेश के विरुद्ध की गई अपील की खंड न्यायपीठ द्वारा सुनवाई अवश्य की जानी चाहिए। अपील उस उच्च न्यायालय में ही की जाएगी जिसके अधिकर क्षेत्र में निर्णय देने वाला अधिकरण जिसके आदेश के विरुद्ध अपील की जानी है, स्थित है। इस उपाय से एल. चन्द्र कुमार के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय की उस गम्भीर तथा प्रमुख आलोचना का भी निराकरण हो जाता है कि किसी प्राधिकरण द्वारा न्यायिक पुनरीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किए गए आदेश की न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती। उक्त निर्णय के अनुसार अधिकरण का आदेश अपनी न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति का उपयोग करते हुए दिया गया है, यदि ऐसा है तो यह आदेश फिर से न्यायिक पुनरीक्षा का विषय नहीं बन सकता। आलोचकों का मत है कि न्यायिक पुनरीक्षा अपने स्वरूप, तत्व तथा अवधारणा की दृष्टि से प्रशासनिक तथा अन्य प्राधिकारियों के प्रशासनिक अथवा अर्ध-न्यायिक कार्यवाही के विरुद्ध होती है। अपील करने का उपचार न केवल अंतिम आदेश अपितु अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध भी उपलब्ध होना चाहिए।

आयोग का विचार है कि यदि उपर्युक्त तीनों उपायों को विभिन्न अन्य उपायों तथा एल. चन्द्र कुमार के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के साथ क्रियान्वित किया जाए तो ये अधिकरण विधि के प्रभावी उपकरण सिद्ध हो सकते हैं और अपने समक्ष उपस्थित होने वाले पक्षों को अधिक संतुष्टि प्रदान कर सकते हैं। इनसे न्याय प्रदान करने वाली प्रणाली में इन अधिकरणों के प्रभावी उपकरण बनाने में अत्यधिक सहायता मिलेगी।

4.6 अधिकरणों के सदस्यों को प्रशिक्षण की आवश्यकता

अधिकरण के सदस्यों को (न्यायिक तथा प्रशासनिक सदस्य/तकनीकी सदस्य) प्रशिक्षण देने की आवश्यकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। फ्रैंक्स समिति (उपर्युक्त) ने भी अधिकरणों के सदस्यों को प्रशिक्षण देने की सिफारिश की है। विधि ने भी प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया है।

(क) भारत के विधि आयोग ने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की संरचना पर अपने 116वें प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिश की है—

> "5.13 · · · · · · · · भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन की संस्तुति करते हुए यह साहसिक पग उठाया जा रहा है कि न्यायिक अधिकारी होने के लिए "··········" बार के तीन वर्षों को अनुभव प्राप्त करने की आवश्यकता को ही समाप्त किया जा रहा है। अत: चूंकि नया विधि स्नातक प्रतियोगी परीक्षा में अर्हता प्राप्त करने के पश्चात् न्यायिक सेवा में प्रवेश ले रहा है अत: पूर्व सेवा प्रशिक्षण का पैटर्न का दोनों विषय और अवधि के संबंध में—महत्व अत्याधिक हो जाता है। . . . . "
>
> "5.14 . . . . .राज्य लोक सेवा आयोग ने सामान्यत: अपनी विश्वसनीयता खो दी है—यह कहने के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। बहुत पहले 1958 में ही विधि आयोग ने कहा था कि कुछ राज्यों के लोक सेवा आयोग के सदस्यों द्वारा दिये गये साक्ष्यों से यह धारणा बनती है कि वे उस पद पर बने रहने योग्य नहीं है, जहां वे बैठे हैं। दक्षिणी के कुछ राज्यों में न्यायिक सेवाओं में चयन करने के लिए आयोगों की पक्षपातहीनता पर गंभीर प्रश्न चिह्न लगाया गया था। . . . . "
>
> " . . . . अब चूंकि अखिल भारतीय स्तर पर न्यायिक सेवा प्रस्तावित और संस्तुत की जा रही है यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग का भी सृजन किया जाए। इसके सृजन के पीछे कारण, संरचना शक्ति कार्य और कर्त्तव्यों की विस्तारपूर्वक चर्चा अलग रिपोर्ट में की जाएगी जो इसी संबंध में होगी। सामान्य रूप से इसमें सदा अवकाश प्राप्त भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के ही एक या दो न्यायाधीश तीन से पांच तक भारत के उच्च न्यायालयों के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश "बार" के एक या दो प्रमुख सदस्य, भारत की बार कौंसिल के सभापति और दो या तीन प्रमुख विधि शास्त्री होने चाहिएं। इस संगठन का गठन भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाना चाहिए।"

विधि आयोग ने न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण पर अपने 117वीं रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिश की है :—

> "न्याय करना अपने आप में एक कला है और कला के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, प्रशिक्षण आवश्यक है। न्याय करने की न्यूनतम योग्यता प्राप्त करने के लिए भूसे में से धान निकालने, झूठ को देखपाने, संबंधित दावों का मूल्यांकन करने, साक्ष्य का मूल्यांकन करने, निष्पक्ष और संतुलित दृष्टिकोण अपनाने, समाज की आवश्यकताओं को समझने, सांविधानिक साक्ष्यों को हृदयंगम करने के लिए प्रखर प्रतिमा और इनसे भी अधिक न्याय करने की उत्कृष्ट इच्छा की आवश्यकता होती है। विधि महाविद्यालयों में विहित किए गए पाठ्यक्रमों में इनमें से कोई भी पहलू का समावेश नहीं किया गया है। यदि ऐसे संवेदनशील व्यक्तियों को, जिनके मस्तिष्क आज के बारे में प्रचलित कुछ अवांछनीय आचारों से दूषित नहीं हुए हैं, अन्य व्यक्तियों के अलावा, ऐसे न्यायाधीशों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है जिसने न्याय करने की कला में निपुणता प्राप्त कर ली है तो इन गुणों को प्राप्त किया जा सकता है । अत: नए विधि स्नातक को अच्छा न्यायाधीश बनने के लिए सुसज्जित करने हेतु प्रशिक्षण अपरिहार्य है। इसी प्रकार, उन व्यक्तियों को भी, जो राज्य न्यायिक सेवा में आधारित स्तर पर प्रवेश करते हैं, न्याय करने की कला में प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। जबकि दोनों के ही बारे में, प्रशिक्षण के आधारभूत सिद्धांत एक से होंगे, सेवा में प्रवेश के लिए पात्र होने के संबंध में विहित की गई न्यूनतम अर्हताओं पर निर्भर करते हुए, प्रशिक्षण की अवधि में अंतर हो सकता है। विधि आयोग को, दोनों ही स्तरों पर सेवा-पूर्व संस्थागत तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यवस्था करनी होगी।"

4.7 नैतिक मूल्यों में ह्रास रोकने के लिए उपाय। चयन प्रक्रिया में बढ़ता भ्रष्टाचार तथा भाई भतीजावाद।

विगत वर्षों में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है और भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद का प्रचलन बढ़ा है।

अजय हासिया तथा अन्य बनाम खालिरयुजीब सेहारावर्दी 1981 (1) सु. को. 722, 755 संविधान पीठ मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की गई :—

> "अब मौखिक साक्षात्कार की खामियों और दोषों तथा देश में प्रचलित परिस्थितियों, विशेषकर नैतिक मूल्यों के ह्रास और बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद, लिखित परीक्षा में प्राप्तांक की तुलना में मौखिक साक्षात्कार में नियत किए गए अंकों के अधिक प्रतिशतता को देखते हुए इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि न्यायालय इस स्थिति को स्वेच्छाचारिता के दोष से मुक्त स्वीकार नहीं कर सकता।"

उच्चतम न्यायालय द्वारा की गयी टिप्पणियों के दो दशाब्दियों पश्चात भी नैतिक मूल्यों में तीव्रगति से होते हुए ह्रास के साथ हमारे देश में भ्रष्टाचार बहुत अधिक बढ़ गया है। देश में बढ़ते हुए विभिन्न घोटाले इसका प्रमाण है। शिवशंकर तिवारी बनाम भारत संघ (1997) सु. को. 444 में देश में हो रहे घोटालो को न्यायपालिका ने भी स्वीकार किया है। इससे पता चलता है कि देश मे व्याप्त भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है जिससे देश के लोकतांत्रिक ढ़ांचे को क्षति पहुँच रही है। राज्य लोक सेवा आयोग के माध्यम से न्यायिक पदो पर नियुक्तियों का अनुभव निराशाजनक है यहां तक कि इन आयोगों की विश्वसनीयता ही समाप्त हो गई है (कृपया इस अध्याय में उद्धृत की गयी भारत के विधि आयोग की 116वीं रिपोर्ट की टिप्पणियां देखें)।

यदि उक्त आयोगों को इन अधिकरणों के लिए सदस्यों के चयन की अधिकारिता से वंचित भी कर दिया जाए तो भी व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से सदस्यों के चयन की पद्धति राजनैतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार भाई भतीजावाद से मुक्त नहीं होगी विशेषतया तब जब प्रमाण के रूप में साक्षात्कार का टेप-रिकार्ड नहीं रखा जाता हो और ऐसे गोपनीय मामलों तक जनता की पहुंच न हो जो चयन प्रक्रिया का विरोध को सके। दूर-दूर से आने वाले प्रत्याशियों के न तो सम्पर्क ही होते हैं और न ही उनके पास इतना समय होता है कि वे चयन प्रक्रिया की अवैधता खोज निकाल सकें और इस प्रकार अवैधताएं चयन प्रक्रिया की फाइलों में छुपी रह जाती हैं।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि जो प्रत्याशी भ्रष्ट साधनों से नियुक्ति पाने में सफल हो जाते हैं वे न्यायनिर्णयन प्रक्रिया के ह्रास को नही रोक सकते क्योंकि वे अधिकरण में स्थान प्राप्त करने के लिए व्यय की गई धनराशि की वापसी चाहते हैं। भ्रष्टाचार का चक्र चलता है और न्यायिक मूल्यों का ह्रास होता है। यह चक्री प्रक्रिया अनन्त हो जाती है क्योंकि लालच कभी कम नहीं होता।

जैसा कि एल० चन्द्र कुमार के मामले में देखा गया है, पैरा 89 (उपर्युक्त), अधिकरणों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कतिपय कठोर कदम उठाने होंगे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अधिकरण अपनी न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने कार्यों की सांविधिक जांच करायेंगे। उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 96 और 97 में यह सिफारिश भी की है कि जब तक सभी अधिकरणों के प्रशासन के लिए एक स्वतन्त्र निकाय का गठन नहीं किया जाता तब तक सभी अधिकरणों का जहाँ तक भी संभव हो, एक शीर्ष मंत्रालय के अधीन रहना वांच्छनीय है। यह मंत्रालय अन्य बातों के साथ-साथ अधिकरणों के सदस्यों के चयन की प्रक्रिया निर्धारित करेगा। वह निकाय भारत के विधि आयोग और मालीमथ कमेटी जैसे विशेषज्ञ निकायों की टिप्पणियों को भी ध्यान में रखेगा।

इन तथ्यों की पृष्टभूमि में, यह स्पष्ट है कि अधिकरण के सदस्यों की संख्या, उनकी सेवानिवृति तथा रिक्त स्थानों आदि का विवरण उक्त शीर्ष निकाय के समक्ष उपलब्ध होगा।

फ्रांस की प्रशासनिक न्यायालय प्रणाली के अन्तर्गत नियुक्तियां राष्ट्रीय प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से की जाती हैं (देखें, प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा न्याय पर वी. एस. चौहान का लेख, ए आई आर 1986 जर्नल 56, 58)। विचाराधीन समस्या के समाधान खोजने में, विधि आयोग का यह सुविचारित मत है कि अधिकरणों में न्यायिक सदस्य (चेयरमैन तथा वाइस चेयरमैन के अतिरिक्त) उच्चस्तरीय लिखित परीक्षा तत्पश्चात व्यक्तिगत साक्षात्कार की प्रक्रिया के माध्यम से चुने जाने चाहिए। प्रत्याशी के लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही उसके व्यक्तिगत साक्षात्कार के बारे में विचार किया जाना चाहिए। लिखित परीक्षा तथा व्यक्तिगत साक्षात्कार के लिए क्रमशः 85 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत अंक नियत किए जाने चाहिएं। व्यक्तिगत साक्षात्कार तथा लिखित परीक्षा प्रमाणिक रिकार्ड कम से कम दो वर्ष तक रखा जाना चाहिए।

अधिनियम की धारा 6 (3) (ख) के अनुसार न्यायिक सदस्य निम्नलिखित दो श्रेणियों में से चुना जाना चाहिए। (क) कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा है या होने के लिए अर्हित है और (ख) भारतीय विधि सेवा का सदस्य रह चुका है और जिसने उस सेवा की श्रेणी-I का पद कम से कम तीन वर्ष तक धारण किया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आयोग न्यायिक सदस्यों का चयन उच्च स्तरीय लिखित परीक्षा और इसके पश्चात व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से करने की सिफारिश कर रहा है, यह आवश्यक है कि न्यायिक सदस्यों के रूप में योग्य व्यक्तियों के चयन हेतु विस्तृत विकल्प उपलब्ध होने चाहिए। इस प्रकार सभी विधि अधिकारी (बिना पदनाम विचार) कम से कम तीन वर्ष तक भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समान किसी पद पर अथवा केन्द्रीय या राज्य सरकार में या केन्द्रीय/राज्य सरकार के स्वामित्व वाले किसी सार्वजनिक उपक्रम में किसी अन्य पद पर जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से कम न हो प्रतियोगी परीक्षा तथा न्यायिक सदस्य के नियुक्ति के लिए पात्र समझे जाने चाहिए। तदनुसार यह सिफारिश की गई कि अधिनियम की धारा 6 (3) (ख) में निम्नलिखित शब्दों का उपस्थापन किया जाना चाहिए :—

> "विधि अधिकारी (पदनाम के विचार के बिना) कम से कम तीन वर्ष तक भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समान किसी पद पर अथवा केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार के अधीन अथवा केन्द्र/राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी सार्वजनिक उपक्रम में ऐसा कोई अन्य पद धारण कर चुका है जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से क्रम नहीं है"।

4.8 राष्ट्रीय अपीलीय प्रशासनिक अधिकरण का गठन : एक वैकल्पिक सिफारिश

उच्चतम न्यायालय ने एल. चन्द्र कुमार के मामले में (उपर्युक्त) अभिनिर्धारित किया है कि पीड़ित-पक्ष भारत के संविधान की धारा 226/227 के अधीन केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध संबंधित उच्च न्यायालय में जा सकता है। इस प्रकार की विधि की प्रतिक्रियाएं देखी गई हैं। कर्नाटक सरकार ने राज्य प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त करने की इच्छा व्यक्त की है। विगत वर्षों में ऐसे समाचार आए हैं कि केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त करने का प्रस्ताव किया है। प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनरीक्षा का प्रावधान और इससे भी आगे अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने की संभावना में न केवल अत्यधिक समय लगता है अपितु व्यवस्था बहुत खर्चीली भी हैं। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की सेवा शर्तों से संबंधित सांविधिक प्रावधानों की विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा भिन्न-भिन्न व्याख्या की जा सकती है। इस प्रकार उच्च न्यायालयों के निर्णयों में एकरूपता न होने और इसी के परिणामस्वरूप केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की पीठों के निर्णयों में एकरूपता के अभाव से पक्षकारों के मस्तिष्क में भ्रम पैदा हो जाता है। इससे न्यायपालिका से न्याय की अपेक्षा करने वाली जनता का विश्वास कम हो जाता है और इस प्रकार लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास होता है।

आयोग का यह सुविचारित मत है कि उपभोक्त संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 20 के अधीन गठित राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद समाधान आयोग की भांति एक राष्ट्रीय अपीलीय प्रशासनिक अधिकरण गठित किया जाना चाहिए। आयोग में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश या भारत के उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश होंगे। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध विधि तथा तथ्य से संबंधित सारगर्भित प्रश्नों पर इस प्रस्तावित अपीलीय फोरम में अपील की जा सकेगी।

मुकदमें पर आने वाले खर्चे को कम करने के विचार से प्रस्तावित फोरम की शाखाएं समस्त देश में स्थापित की जाएंगी।

प्रस्तावीत अपीलीय न्यायालय का निर्णय केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरणों की सभी न्यायपीठों के लिए बाध्यकारी होगा। प्रस्तावित फोरम का स्तर उच्च न्यायालय से ऊंचा तथा उच्चतम न्यायालय से नीचा होगा।

प्रस्तावित अपीलीय फोरम के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी। सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130-इ के अन्तर्गत सी. ई. जी. ए. टी. के निर्णयों के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जाती है। इसी प्रकार उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 23 के अन्तर्गत राट्रीय आयोग के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में की जाती हैं उच्चतम न्यायालय को पहले अपीलीय न्यायालय के रूप में परिवर्तित कर देना उचित नहीं होगा क्योंकि अधिकरणों के आदेशों के विरुद्ध इतनी बड़ी संख्या में उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने से उच्चतम न्यायालय की महत्ता कम हो जाएगी और इसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक व्यवस्था को हानि पहुंचेगी (1994 (2) जर्नल सैक्शन स्केल द्वारा न्यायमूर्ति ए. एम. अहमदी)। इस प्रकार पीडित पक्षकार अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध रिट दायर नहीं कर सकेगा क्योंकि यह स्वस्थापित विधि है कि जहां अपील करने की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध है वहां कोई भी व्यक्ति सीधे

रिट दायर नहीं कर सकेगा (देखे ए. आई. आर. 1996 सु. को. 1209, ए. आई. आर. 1997 सु. को. 2189) यद्यपि यह निर्विवाद तथ्य है कि जहां उस विधि की शक्ति को ही चुनौती दी जाती है जिसके अधीन अधिकरण का गठन हुआ है वहां भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत रिट का अवलंब लिया जा सकता है परन्तु इस प्रकार के मामलों की संख्या बहुत ही कम होगी। इसी प्रकार जब प्रस्तावित अपीलीय प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने की अवधारणा है तब संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर नहीं की जा सकेगी।

एल. चन्द्र कुमार के मामले में दिए गए निर्णय (उपर्युक्त) के पश्चात् सामने आने वाली समस्याओं का समाधान भी इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जा सकेगा।

अपीलीय फोरम के प्रस्तावित अध्यक्ष का वेतन तथा भत्ते आसीन न्यायाधीश के समान ही होंगे।

एल. चन्द्र कुमार के मामले के अनुसरण में (उन मामलों के सिवाय जिनमें उस शक्तिमत्ता को ही चुनौती दी गई है जिसके अन्तर्गत अधिकरण का गठन हुआ है) केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध सभी लंबित रिट याचिकाएं प्रस्तावित अपीलीय फोरम को अन्तरित कर दी जाएंगी।

यह प्रस्ताव तभी प्रभावी और लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जब अपीलीय फोरम की न्यायपीठ सभी महत्वपूर्ण केन्द्रों पर, उच्च न्यायालय की ही भांति कम से कम राज्य की राजधानी में, स्थापित की जाएं।

4.9 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण और प्रस्तावित राष्ट्रीय अपीलीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष समूहित अपील :—

समय की मांग है कि मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाए। वे सभी मामले जिनमें विधि का एक या एक से अधिक समान प्रश्न उठते हैं, वे सभी मामले एक सामान्य निर्णय से निपटाए जा सकते हैं, ऐसे मामलों को एक साथ लेकर एक साथ सुनवाई की जानी चाहिए। इस प्रकार उच्च न्यायालयों तथा अन्य अपीलीय न्यायालयों में विलम्ब और शेष मामलों पर भारत के विधि आयोग के 79वें प्रतिवेदन में यह सिफारिश प्रतिध्वनित हुई है जैसा कि अध्याय 3 (उपर्युक्त) में उद्धृत की गई है।

4.10 "उच्चतम न्यायालय, एक नया रूप" विषय पर भारत के विधि आयोग ने अपनी 125वीं रिपोर्ट के पैरा 4.20 में सिफारिश की हैं

> "न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों के अन्तर्गत आने वाले मामलों को एक कम्प्यूटर द्वारा समूहित किया जाना चाहिए"

उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के अतिरिक्त यदि प्रस्तावित अपीलीय फोरम के भी कोई निर्णय हैं तब इनके अन्तर्गत आने वाले मामलों और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण तथा प्रस्तावित फोरम के समक्ष लम्बित मामलों को समूहित करके एक साथ निपटाया जाना चाहिए।

इस पैराग्राफ में तथा पूर्ववर्ती पैराओं मे अन्तर्विष्ट सिफारिशों को सही ढंग से क्रियान्वित करने के उद्देश्य से केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/ राज्य प्रशासनिक अधिकरण तथा प्रस्तावित अपीलीय फोरम द्वारा अनुसंधान अधिकारी नियुक्त किए जाने चाहिए ताकि सामान्य मामलों का और न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों का पता लगाकर जो लम्बित मामलों के लिए बाध्यकारी हैं वे संबंधित अधिकरणों की इस संबंध में सहायता कर सकें। वे अधिकरणों के विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता बढ़ाने में और इस प्रकार उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकरणों के सहायक सिद्ध होंगे। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण तथा प्रस्तावित फोरम वादियों/प्रतिपक्षी से समय-समय पर आवेदन आमंत्रित कर सकेंगे। तब अनुसंधान अधिकारी आवेदकों के दावों की जांच कर सकेंगे और न्यायोचित आदेश पारित करने हेतु न्यायपीठ के लिए अपनी टिप्पणी देंगे। फोरम मामलों को निपटाने से पूर्व उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के अनुसार, जो उनके लिए बाध्यकारी है, पक्षकारों को नोटिस जारी करेंगे। इसी प्रकार अनुसंधान अधिकारी विचाराधीन पड़े मामलों को समूहित करने का प्रयास करेंगे जिनपर एक साथ सुनवाई की जा सकेगी।

4.11 पक्षकारों द्वारा डाक से भेजे गए तर्कों के आधार पर मामलों का निपटारा

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 19 के अन्तर्गत सुगमता/पारदर्शिता जैसे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किसी पक्ष द्वारा आवेदन डाक से भी भेजा जा सकता है (केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 का नियम 4)। इसमेंआगे बताया गया है कि यदि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण /राज्य प्रशासनिक अधिकरण अथवा प्रस्तावित फोरम द्वारा नोटिस दिया जाता है तो प्रतिपक्ष को अपना उत्तर डाक से भेजने की अनुमति होगी। यह भी निर्धारित किया जा सकेगा कि आवेदक इस उत्तर पर अपना प्रत्युततर भी इसी प्रकार से भेज सकेगा।

इसी प्रकार आवेदक को अपने लिखित तर्क/पक्षसार भारत के विधि आयोग की "उच्चतम न्यायालय - एक नया रूप" विषय पर 125वीं रिपोर्ट के पैरा 4.18 में अन्तर्विष्ट निम्नलिखित सिफारिश के अनुरूप भेजने की अनुमति होनी चाहिए :—

> "4.18.........अतः अब यह अनिवार्य हो गया है कि मौखिक बहस के प्रति इस उदार दृष्टिकोण से समय की मांग की जाना आवश्यक हैं। ऐसे अनेक मामले हैं जिन्हें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति बता सकते हैं, जिनमें मौखिक बहस को पूर्णतः अलग किया जा सकता है। विशेष इजाजत पिटीशनों को जिन्हें मौखिक बहस के बिना ग्रहण किया जा सकता है, न्यायालय में सूचीबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उन्हें परिचालित करके स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। जिस पिटीशनों में बहस आवश्यक हो वहां सुनवाई आधे घंटे से अनधिक अवधि तक सीमित की जा सकती है। अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध मामलों में, न्यायालय को पहले से समय विहित करना चाहिए और उसका कड़ाई से पालन करना चाहिए। न्यायालयों को मौखिक बहस समाप्त करके लिखित ब्रीफ का आग्रह करने के लिए सशक्त किया जाना चाहिए।"

प्रस्तावित अनुसंधान अधिकारी प्राप्त हुए लिखित पक्षकारों के आधार पर मामलों को निपटाने में अधिकरण की सहायता करेंगे।

लिखित अनुरोध करने की प्रक्रिया से कम से कम किसी वकील विशेष के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण अपनाने में सावधानी रहेगी और अधिकरण का समय बचेगा।

सबसे बड़ी बात यह है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अनुपालन न करने के परिणाम की जानकारी, विशेषकर जबकि पक्षकार ने लिखित पक्षसार में इसकी ओर ध्यान दिलाया हो, अधिकरण के सभी सदस्यों को भेजना आवश्यक होगा। परिणाम होगा, न्यायालय की अवमानना जैसाकि **श्री वरदकान्त मिश्र** बनाम **श्री भीमसेन दीक्षित** के मामले ए. आई. आर. 1972 सु. को. 2466, में, अभिनिर्धारित किया गया है।

> "15-16 किसी पूर्वतर निर्णय में निर्धारित विधि का जानबूझकर अनुपालन न करने जैसे कदाचार से संवैधानिक प्राधिकार और उच्च न्यायालय के सम्मान को ठेस पहुंचती है। इससे विधि सम्मत शासन को क्षति पहुंचने की संभावना रहती है और विधि के प्रशासन में परेशान करने वाली अनिश्चितता तथा भ्रम पैदा होता है।"

यह सिफारिश अधिकरण के सदस्य को उसके कृत्य के लिए, यदि वह विधि सम्मत शासन की अवहेलना करता है, उत्तरदायी बनाने की दिशा में उठाया गया एक कदम होगा।

यह देखा गया है कि पक्षकार तथा उनके वकील कई बार उच्चतर न्यायालयों के समक्ष ऐसे विवाद उठाते है कि यद्यपि निचले न्यायालय में उच्च न्यायालय का विशिष्ट निर्णय उद्धृत किया था फिर भी उसने अपने निर्णय में उसका कोई उल्लेख नहीं किया। न्याय प्रशासन के हित संवर्धन के उद्देश्य से, ताकि विधि सम्मत शासन को और सुदृढ बनाया जा सके, यह महसूस किया जाता है कि अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में बहस को आरम्भ से दोनों पक्षों का अपने लिखित तर्क-वितर्क यदि दोनों पक्ष चाहते हों, प्रस्तुत करने की व्यवस्था होनी चाहिए और बहस के अन्त में दोनों पक्ष उन मामलों की सूची प्रस्तुत करेंगे जो सुनवाई के दौरान उन्होंने अधिकरण के समक्ष उद्धृत किए है। इस प्रक्रिया से उन मुद्दों पर कोई विवाद नहीं उठेगा और पीठासीन अधिकारी उच्चतर न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का पालन करेंगे और पक्षकार परेशानी तथा विधि के प्रशासन में भ्रम से बचेंगे।

4.12 अधिकरण के सेवानिवृत सदस्यों की न्यायपीठ गठित करना

जैसा कि विधि आयोग ने अपनी 124वीं रिपोर्ट "हाई कोर्ट —एक नई दृष्टि" विषय के पैरा 3.15 से 3.26 तक पाया है कि उच्च न्यायालयों में अनेकों मामले ऐसे है जो पांच वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। उन्होंने सिफारिश की है कि सेवानिवृत न्यायाधीशों की न्यायपीठ गठित की जाए जो प्रातःकाल 8.30 बजे से 12 अथवा 12.30 तक सिविल, अपराधिक तथा प्रकीर्ण कार्य करे। तत्पश्चात 12 या 12.30 बजे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश आकर सायंकाल 5.30 बजे तक कार्य करें और मध्या भोजन के लिए आधा घंटे का अवकाश लें। इस प्रकार न्यायाधीशों के गहन अनुभव तथा न्यायप्रक्रिया के उनके विशेष ज्ञान का लाभ उठाया जा सकता है। इसी प्रकार अधिकरणों में लम्बित पड़े मामलों को निपटाने के लिए अधिकरणों के सेवानिवृत सदस्यों के सेवाओं का भी उपयोग किया जा सकता है और इस प्रकार इस कार्य में भवन, ग्रन्थालय आदि की व्यवस्था करने पर कोई अतिरिक्त लागत नहीं आएगी।

4.13 कर्मचारियों तथा सरकार के बीच मुकदमेबाजी कम करने के लिए नीति निर्धारित करना तथा तंत्र की व्यवस्था करना

जब तक सरकार या सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा मुकदमों के संबंध में कोई उचित नीति नहीं बनाई जाती, जब तक विधिक अधिकरण स्थापित करने जैसी प्रचलित धारणा को प्रोत्साहन देना एक निरर्थक प्रयास होगा। भारत के विधि आयोग ने अपनी 126वीं रिपोर्ट में कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान के लिए एक प्रभावी शिकायत सैल बनाने की सिफारिश की है जो अध्याय तीन (उपर्युक्त) में उद्धृत की गई है।

हम उनकी पुनरावृति किए बिना ही उनका इस दृष्टि से पुनः उल्लेख करते हैं जब तक समस्याओं के समाधान के लिए मुकदमों के संबंध में कोई उपयुक्त नीति नहीं बनाई जाती और तंत्र विकसित नहीं किया जाता तब तक औद्योगिक संबंधों को क्षति होती रहेगी और उत्पादकता का ह्रास होता रहेगा।

4.14 निरर्थक प्रतिवाद की लागत आंकने की आवश्यकता :

तथ्यों और विधि से संबंधित निरर्थक और विश्वसनीय प्रश्न उठाना एक सामान्य बात है। भारत के विधि आयोग ने अपनी 131वीं रिपोर्ट में सिफारिश की है (अध्याय तीन में उद्धृत) कि पीठासीन न्यायाधीश को निर्णय देते समय यह प्रमाणित करना चाहिए कि क्या प्रतिवाद में निरर्थक

और अविश्वसनीय प्रश्न उठाए गए है, उन पर निर्णय देने में कितना समय लगा और यदि ऐसा हुआ है तो उस पर आयी लागत अभिनिर्णीत की जानी चाहिए। इससे निरर्थक मामले दायर करने की प्रवृति पर रोक लगेगी। हम अधिकरणों में भी क्रियान्वित किए जाने हेतु उन सिफारिशों का पुनः उल्लेख करते है।

4.15 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण में विरोधात्मक निर्वचनों को आरम्भ में ही समाप्त करने हेतु एक तंत्र स्थापित करने की आवश्यकता:

जब तक उच्च स्तरों पर निर्णयों में एकरूपता नहीं रहती, पक्षकारों के मस्तिष्क में भ्रम की स्थिति बनी रहती है। आयोग ने अपनी 136वीं रिपोर्ट में इस समस्या पर विस्तार से विचार किया है और समस्या के समाधान के लिए उपायों की सिफारिश की हैं।

हम अध्याय तीन में उद्धृत उपायों का पुनः उल्लेख करते हैं और यह सिफारिश करते हैं कि अधिकरणों को विरोधात्मक निर्णयों को उच्चतम न्यायालय को निर्दिष्ट करने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए इससे पीड़ित पक्ष को भी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का अवसर मिल जाएगा।

4.16 आदेश की पुनरीक्षा करने के लिए पीड़ित पक्षकार को सुने जाने का अधिकार और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की पुनरीक्षा शक्ति की सीमा का स्पष्ट प्रावधान करने की आवश्यकता तथा इसे समाचार पत्रों में प्रकाशित कराने की आवश्यकता और संबंधित विभाग द्वारा इसका परिचालित किया जाना ताकि वे व्यक्ति उन कार्यवाहियों में हस्तक्षेप कर सके जिनसे वे प्रतिकूल रूप में प्रभावित है :—

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 22 (3) (च) अपने निर्णयों के पुनर्विलोकन के संबंध में अधिकरण की शक्तियों का कथन है और निम्नलिखित उपबन्ध किया गया है :—

> "3 अधिकरण को इस अधिनियम के अधीन अपने कर्तव्यों के निर्वहन करने के प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित विषयों की बाबत वहीं शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय में निहित होंगी, अर्थात् (च) अपने विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करना,

सिविल प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया) नियम, 1987 के नियम 17 में पुनर्विलोक के लिए आवेदन देने की प्रक्रिया अभिनिर्धारित की गई है। नियम 17 के उप नियम (1) के अधीन यह उपबंधित है कि पुनर्विलोकन के लिए कोई भी आवेदन यदि उस आदेश की प्रति की प्राप्ति के 30 दिन की अवधि के अन्दर प्रस्तुत नहीं किया जाता, जिसका पुनर्विलोकन किया जाना है, स्वीकार नहीं किया जाएगा।

के. अजीत बाबू बनाम भारत संघ ए आई आर 1997 सु. को. 3217 के मामले में यह प्रश्न पैदा हुआ कि क्या पुनर्विलोकन के लिए ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा भी किया जा सकता है जो मामले में पक्षकार नहीं है परन्तु जिस पर अधिकरण के पूर्व निर्णय का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्णीत किया :—

> "4 .... बहुधा सेवा संबंधी मामलों में अधिकरण अथवा न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों से ऐसे अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं जो मामलों में पक्षकार नहीं होते है। इससे एक वर्ग के कर्मचारियों को तो सहायता मिल सकती है साथ दूसरे वर्ग के कर्मचारियों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में न्यायालयों अथवा अधिकरणों के निर्णय पूर्णतया व्यक्तिबंधी निर्णय नहीं हो सकते जिनसे केवल वादों से संबंधित पक्षकार ही प्रभावित होते हो, वे सर्वबंधी निर्णय होंगे। ऐसी परिस्थिति में प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार प्रभावित होने वाले व्यक्तियों के लिए जो मामले में पक्षकार भी नहीं है फिर भी मामले में हुए निर्णय से उनकी वरिष्टता के मामले में उनके अधिकार प्रभावित होते हैं, क्या उपचार उपलब्ध हे। वर्तमान मामले में, अधिकरण द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण से कि प्रभावित व्यक्तियों के लिए एक मात्र यह उपचार उपलब्ध है कि वे निर्णय के पुनर्विलोकन का मामला दायर करें न कि अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत एक नया आवेदन। अधिनियम की धारा 22 (3) (च) में अधिकरण को अपने निर्णय के पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त है। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया और नियम) (यहां इसके पश्चात नियमों के रूप में निर्दिष्ट) के नियम 17 में यह व्यवस्था है कि पुनर्विलोकन के लिए आवेदन केवल तभी स्वीकार्य होग जब यह उस आदेश की, जिसके पुनर्विलोकन की मांग की गई है, प्रति प्राप्त होने के 30 दिन के भीतर प्रस्तुत किया गया हो। सामान्यतया पुनर्विलोकन का अधिकार केवल उन लोगों के लिए ही उपलब्ध है जो मामले में पक्षकार है। यदि हम धारा 22 में निर्दिष्ट "व्यथित व्यक्ति" शब्दों का व्यापक अर्थ लें तो भी क्या इस प्रकार व्यथित व्यक्ति, अधिकरण द्वारा निर्णीत समस्त मामले को खुलवाकर पुनर्विलोकन के लिए आवेदन कर सकते है। पुनर्विलोकन का अधिकार अपील करने के अधिकार के समान नहीं है जहां सभी निर्णीत प्रश्नों को चुनौती दी जा सकती है। पुनर्विलोकन का अधिकार केवल उन सीमित आधारों तक ही उपलब्ध है जिनका उल्लेख सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 में किया गया है। यद्यपि निश्चितार्थ में सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 47 अधिकरण पर लागू नहीं होता है परन्तु उसमें अन्तर्निहित सिद्धान्तों का निश्चित रूप से विस्तार किया जा सकता है। अन्यथा पुनर्विलोकन शक्ति की

कोई सीमा न होने के कारण इसके लिए अपील करनी होगी और अन्तिम निर्णय की भी कोई निश्चितता नहीं होगी। इसके अतिरिक्त, यदि इस प्रकार का आवेदन समय सीमा में प्रस्तुत किया जाता है तो पुनर्विलोकन का अधिकार बना रहता है। अधिकरण द्वारा किया गया निर्णय, यदि पुनर्विलोकन नहीं किया जाता ओर निर्णय के विरुद्ध अपली नहीं की जाती, अन्तिम माना जाता है। यदि पुनर्विलोकन की शक्ति अनुमात्य रहती है तो कोई भी निर्णय अन्तिम नहीं होगा क्योंकि निर्णय से प्रतिकूल रूप में पुनर्विलोकन किया जा सकेगा। पक्षकार जिसके पक्ष में निर्णय हुआ है सदैव सदैव के लिए मामले की निगरानी नहीं कर सकता। लोकनीति की मांग है कि वादो का अन्त होना चाहिए और यदि अधिकरण का विचार स्वीकार कर लिया जाता है तो मामले में कार्यवाही कभी समाप्त ही नहीं होगी। अत: हमने निष्कर्ष निकाला है कि पीड़ित पक्ष को पुनर्विलोकन का अधिकार सीमित अवधि में किए गए आवेदन पर सीमित आधारों पर ही, जिनका उल्लेख सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 में किया गया है, उपलब्ध होगा।

श्री गोपाबन्धु विस्वाल बनाम कृष्णचन्द्र महन्ती, 1998 (3) स्केल 226 मामले में हाल ही के एक निर्णय में, के. अजीत बाबू मामले में दिए गए निर्णय का भी उल्लेख किया गया, तीसरे पक्षकार के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की गई:—

''10 ……… हम कुछ समय के लिए यह मान लेते है कि आवेदक व्यथित व्यक्ति है। इस पर भी प्रश्न यह उठता है कि क्या उन्हें इस न्यायालय के आदेश से, जो पुनर्विलोकन में आपस्त कर दिया जाए, अन्तिम निर्णय प्राप्त हो सकेगा। इसमें कोई सन्देह नही है कि मूल निर्णय के पक्षकारों के लिए निर्णय अन्तिम और बाध्यकारी है। इसलिए प्रत्यर्थी, उडीसा राज्य और भारत संघ, गोपाबन्धु विस्वाल के मामले मेंअधिकरण के निर्णय, 1989 के टी. ए. सं. 1 को प्रभावी बनाने के लिए बाध्य है। यदि ऐसा है, तो क्या याचिका दायर करके तीसरा पक्ष उसी निर्णय का पुनर्विलोकन करा सकता है और ऐसा आदेश प्राप्त कर सकता है कि गोपाबन्धु विस्वाल मूल निर्णय में अन्तर्विष्ट निर्देशों का लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं है। हमारे विचार में यह सम्पूर्ण अननुमेय है। इससे वह मामला फिर से खुल जाएगा जो इस न्यायालय के आदेश के कारण अन्तिमता प्राप्त कर चुका है। आवेदकों को यद्यपि वे व्यथित व्यक्ति है, वर्तमान मामले में आदेश 47 के नियम 1 के अधीन पुनर्विलोकन का कोई अधिकार नहीं है। आदेश 47 के नियम 1 (2) के अधीन भी डिक्री अथवा आदेश की अपील न करने वाला पक्षकार भी पुनर्विलोकन के लिए अपील के आधारों के अतिरिक्त जो अपीलीय न्यायालय के सम्मुख थे तथा अपील के विचाराधीन काल में भी विद्यमान थे, अन्य आधारों पर आवेदन कर सकता है। वर्तमान मामले में वे सभी आधार जो पुनर्विलोकन में बताए गए वास्तव में अधिकरण के समक्ष, जब अधिकरण ने मूल आवेदन पर निर्णय दिया, विद्यमान थे और याचिकादाता ने इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई विशेषानुमति याचिका में भी इन आधरों का आग्रह किया था। विशेष अनुमति याचिका को खारीज कर दिया गया था। किसी अन्य पक्षकार द्वारा याचिका में फिर से उन्ही आधारों का उल्लेख नहीं किया जा सकता।

''11 आवेदकों के अनुसार कतिपय दस्तावेज यद्यपि अधिकरण के सम्मुख प्रस्तुत कर दिए गए थे परन्तु अधिकरण ने मुख्य मामले पर निर्णय करते समय उन पर ध्यान नहीं दिया। इस पर भी अधिकरण के निर्णय को एक बार अन्तिमता प्राप्त होने के पश्चात उस निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका के खारिज कर दिये जाने के पश्चात, मामले को फिर से नहीं खोला जा सकता। जो व्यक्ति उस निर्णय को चुनौती देना चाहता है उसके लिए एकमात्र उपाय अधिकरण के समक्ष अपने मामले में एक पृथक आवेदन करना है और अधिकरण को या तो मामले को एक बडी न्यायपीठ को निर्दिष्ट करने के लिए सहमत कराने अथवा, यदि अधिकरण अपने पहले निर्णय का अनुसरण करना चाहता है तो अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपील दायर करने और अपील में उस निर्णय को खारिज कराना है। पुनर्विलोकन उपलब्ध उपचार नहीं है।

''12. नि: संदेह जब अधिकरण सेवा संबंधी नियमों तथा विनियमों का निर्वचन करता है तो किए गए निर्वचन से सेवा के भूतकालिक, वर्तमान तथा भविष्य के कर्मचारी प्रभावित हो सकते हैं ''व्यथित व्यक्ति'' शब्दों को व्यापक अर्थ देने का तात्पर्य अधिकरण के समक्ष सुनवाई में अपील में अथवा पुनर्विलोकन याचिका दायर करने में व्यक्तियों के हस्तक्षेप करने का अधिकार बढ़ जाएगा। फिर भी इस अधिकार का उपयोग उपयुक्त समय पर तथा विधि के अनुरूप किया जाना चाहिए। पुनर्विलोकन याचिका आदेश 47 नियम के साथ पठित प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 22 (3)(च) के अधिकार क्षेत्र के भीतर तथा प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अनुरूप होनी चाहिए। वर्तमान पुनर्विलोकन याचिकाएं आदेश 47 नियम 1 में निर्धारित सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है। ये संबंधित नियमों अनुरूप भी नहीं है। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रक्रिया) नियम 1987 के नियम 17 में अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कोई भी आवेदन, यदि पुनर्विलोकन किए जाने वाले आदेश की प्राप्त होने के 30 दिन की अवधि के भीतर दायर नहीं किया जाता है, स्वीकार नहीं किया जाएगा ......''

''16. ...... यदि अधिकरण अपने पूर्व निर्णय का अनुसरण करने का विनिश्चय करता हैं तो प्रत्यर्थी, यदि चाहते हैं, इन आवेदनों में अपील करने की अनुमति के लिए याचिका दायर कर सकते हैं, और कोई अन्य व्यथित व्यक्ति भी, न्यायालय की अनुमति से, अपील करने के लिए विशेष अनुमति याचिका के लिए आवेदन कर सकता है। यदि अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि

उसके पूर्व निर्णय के पुनर्विलोकन की आवश्यकता है तो अधिकरण प्रश्न को एक बड़ी न्यायपीठ के लिए निर्दिष्ट कर सकता है। दोनों ही मामलों में व्यथित व्यक्ति आवेदन कर सकता है और अपना पक्ष रखने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है।''

उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय से यह स्पष्ट हो जाता है कि :—

(क) सामान्यतया पुनर्विलोकन का अधिकार मामले के पक्षकारों के लिए उपलब्ध है।

(ख) उन परिस्थितियों में जहां निर्णयों से ऐसे अन्य व्यक्ति भी प्रभावित होते हों जो मामले में पक्षकार नहीं हैं, ऐसे निर्णय व्यक्तिबंधी न होने के कारण केवल मामले के पक्षकारों को ही प्रभावित करते हैं। व्यथित व्यक्ति को, अधिकरण की अनुमति से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 में उल्लिखित सीमित आधारों पर और इन सब से परे यदि आवेदन समय सीमा में किया जाता है, पुनर्विलोकन का अधिकार होना चाहिए।

(ग) अधिकरण अथवा न्यायालय के निर्णयों के पुनर्विलोकन का अधिकार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 में उल्लिखित सीमित आधारों पर ही उपलब्ध होना चाहिए और उसमें अन्तर्विष्ट सिद्धान्तों का विस्तार अधिकरण तक के लिए किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, आयोग का यह सुविचारित मत है कि अधिनियम की धारा 22 (3)(च) में व्यथित व्यक्ति के लिए, (जो कार्यवाही में पक्षकार नहीं है) अधिकरण की अनुमति से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 में उल्लिखित सीमित आधारों पर, पुनर्विलोकन का अधिकार स्पष्ट रूप में जोड़ने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए। जहां तक पक्षकारों का संबंध है, उन्हें उक्त प्रावधान के अन्तर्गत पुनर्विलोकन का अधिकार पहले ही उपलब्ध है।

4.17 स्वतंत्रता, सुगमता/पारदर्शिता, विशिष्ट ज्ञान, प्रतिनिधित्व, कार्यकुशलता तथा उत्तरदायित्व के बेहतर स्तर सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्रशासनिक न्याय प्रणाली में सुधार किया जाना चाहिए।

अध्याय-पांच

सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण

5.1 सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण, सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 129 क अधीन केन्द्रीय उत्पादशुल्क और नमक अधिनियम 1944 की धारा 35 ख, 35 ग तथा 35 घ के साथ पठित धारा 2 में दी गई परिभाषा के आधार पर गठित किया गया है। यह अधिकरण केन्द्रीय उत्पादशुल्क और नमक अधिनियम, 1944 के प्रयोजनों के लिए अपील अधिकरण भी है। यह बताना आवश्यक है कि वह अधिकरण अनुच्छेद 323 ख के अधीन गठित नहीं किया गया है अपितु उपर्युक्त विशेष अधिनियमितियों के अधीन गठित किया गया है जो किसी भी रूप में अनुच्छेद 323 ख से सम्बद्ध नहीं है। केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम की धारा 35 ठ (ख) और सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130 ङ (ख) में देय शुल्क की दर अथवा मूल्यांकन के प्रयोजन से माल के मूल्य, यहाँ इसके पश्चात् सुविधा हेतु क्रमश: वर्गीकरण और मूल्यांकन के रूप में निर्दिष्ट, से संबंधित प्रश्न के अवधारण से संबंधित मामलों में अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है। अन्य मामलों में केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम की धारा 35 छ और सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130 के अधीन, मामला संबंधित उच्च न्यायालय को निर्दिष्ट किया जा सकता है। वास्तव में दोनों अधिनियमितियों के अधीन जो भी मामले सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील प्राधिकरण के सम्मुख आते हैं उनमें देय शुल्क अथवा मूल्यांकन के प्रयोजन से माल के मूल्य से संबंधित मामलों की संख्या आधे से कम नहीं है। इस प्रकार दोनों अधिनियमितियों के अधीन अधिकरण द्वारा पारित आदेशों में से आधे आदेशों के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने क प्रावधान है और ये मामले राजस्व तथा निर्धारितियों के हितों के अन्तर्गत होने से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। अधिकरण द्वारा निर्णीत अन्य मामलों में निर्देश के द्वारा उच्च न्यायालय में जाने की प्रक्रिया को स्वीकार किया गया है। यहां भी, ऐसे निर्देश पर उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय के विरुद्ध केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम की धारा 35 ठ (क) और सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130 ङ (क) के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है। यद्यपि इन दोनों अधिनियमितियों में उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के अपवर्जन का सीधा और स्पष्ट प्रावधान नहीं है परन्तु दोनों में विवाक्षित तौर पर ऐसा ही है। अधिकरण द्वारा निर्णीत अधिकाश मामलों में सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान करके, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226, 227 और अनुच्छेद 32 के न्यायिक पुनर्विलोकन के उपचार की तुलना में एक बेहतर और व्यापक उपाय है, उच्च न्यायालय का अपवर्जन करने का आशय पर्याप्त रूप में स्पष्ट हो गया है। उच्च न्यायालय को निर्देश करने का उपचार, आयकर अधिनियम 1961 द्वारा निर्धारित एक प्रक्रिया (निरसित भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 द्वारा भी) एक सुस्थापित प्रक्रिया है और किसी ने भी ऐसा सुझाव नहीं दिया है कि अधिकरण के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय को निर्देश और उच्चतम न्यायालय में अपील के अतिरिक्त आयकर अपील अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध न्यायिक पुनरीक्षा का अधिकार भी उपलब्ध है।

विधि आयोग का मत है कि सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण द्वारा किए गए कार्य राजस्व एवं निर्धारितियों दोनों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। अधिकरण के समक्ष आने वाले मामलों में करोड़ों अरबों रुपये की राशि अन्तर्ग्रस्त होती है। केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम की धारा 35 च और सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 129 ङ द्वारा अधिकरण को अपील के विचाराधीन रहते रोकादेश स्वीकृत करने की भी शक्ति प्राप्त है। यदि रोकादेश को स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है और अधिकरण द्वारा न्यायोचित अल्प अवधि में अपील में निर्णय नहीं दिया जाता तो इससे राजस्व तथा निर्धारिति दोनों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। मफतलाल इन्डस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ 1997 (ङ) सु. को. 536 मामले में अनुचित समृद्धि तथा उपर्युक्त सिद्धान्त का सांविधिक मान्यता प्रदान करने वाले 1991 के (संशोधनकारी) अधिनियम 40 की वैधता को पुष्ट करते और मान्यता प्रदान करते हुए उच्चतम न्यायालय की एक बडी संविधान पीठ के निर्णय के पश्चात् ऐसा और भी अधिक है। यह विशेष रूप से निर्धारितियों के हित में है कि वर्गीकरण और मूल्यांकन संबंधी विवाद शीघ्रतातिशीघ्र निपटाए जाए। विधि आयोग महसूस करता है कि इस अधिकरण द्वारा किए जाने वाले कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वरूप की संबंधित पक्षों द्वारा पर्याप्त सराहना नहीं की गई है और संभवतया इसी कारण से सरकार ने पर्याप्त न्यायपीठ बनायी है जो अधिकरण में बड़ी संख्या में दायर की गयी अपीलों के निपटाने के लिए पूर्णतया अनिवार्य है। (वास्तव में, प्रत्येक आने वाले वर्ष में अपीलों की संख्या बढ़ती जा रही है जिससे पिछले शेष मामलों की संख्या में और वृद्धि हो रही है) इस तथ्य को देखते हुए कि अधिकरण द्वारा निर्णीत अधिकांश मामलों में उपर्युक्त दोनों अधिनियमों के अधीन अपील सीधे उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। इसका यह अर्थ निकालना अनुचित नहीं होगा कि इस अधिकरण को संसद द्वारा उच्च न्यायालय के लगभग समान स्तर की मान्यता दी गई है। इससे अधिकरण के स्तर और गरिमा को तद्नुसार बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

अधिकरण को विधि का प्रभावी उपकरण बनाने के विचार से उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिनके लिए अधिकरण गठित किया गया तथा केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम और सीमाशुल्क अधिनियम में अन्तर्निहित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की जा रही है और आयोग आशा करता है कि भारत सरकार इन्हें अविलम्ब क्रियान्वित करेगी। सिफारिशें इस प्रकार है :

(क) कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में तभी नियुक्त किया जा सकेगा जब वह किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश है या रहा है। वह अपनी कार्यकुशलता, निष्ठा और कठिन परिश्रम के लिए विख्यात होना चाहिए। उसे अन्य परिलब्धियों तथा सुविधाओं के अतिरिक्त, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में जिनका वह हकदार था, नियुक्ति के तुरन्त पश्चात् उसके पदस्तर के अनुरूप नई दिल्ली में आवास उपलब्ध कराया जाना चाहिए। अध्यक्ष का चयन भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश तथा उच्चतम न्यायालय के दो अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा किया जाना चाहिए। परम्परा के रूप में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अध्यक्ष की सेवानिवृति और उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बीच कोई समय अन्तराल न रहे। जब कोई पदासीन या सेवानिवृत उपयुक्त मुख्य न्यायाधीश उपलब्ध न हो केवल तभी उच्च न्यायालय के अपेक्षित योग्यता रखने वाले वरिष्ठ पीठासीन या सेवानिवृत न्यायाधीश को नियुक्त करने पर विचार किया जाना चाहिए। एक कुशल और प्रभावी अध्यक्ष ही अधिकरण की कार्यप्रणाली में बड़े पैमाने पर सुधार कर सकता है। यह अनुभव प्रमाणित तथ्य है।

(ख) सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 129 में संशोधन की अपेक्षा की गई है। अधिकरण के अध्यक्ष की नियुक्ति पर बताए गए रूप में सीधी नियुक्ति होनी चाहिए जब कि धारा 129 में, जैसी कि यह वर्तमान में है अधिकरण के सदस्यों में से एक सदस्य को अधिकरण का अध्यक्ष नियुक्त करने की अवधारणा है। जबकि उपाध्यक्ष की नियुक्ति सदस्यों में से की जा सकती है, अधिकरण के अध्यक्ष का चयन सीधे पदासीन अथवा सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत होने वाले या सेवानिवृत वरिष्ठ न्यायाधीश में से किया जाना चाहिए।

(ग) अधिकरण में न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति के मामले में जहां तक भी सम्भव हो आयु वर्ग के बीच के सदस्यों को नियुक्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। उनकी नियुक्ति किसी शहर विशेष में हो जाने के तुरन्त बाद उन्हें सरकारी आवास उपलब्ध कराया जाना चाहिए और उन्हें वे सभी परिलब्धियां और सुविधाएं मिलनी चाहिए जो उनके पद के लिए स्वीकार्य है। किसी स्थान विशेष पर उनकी नियुक्ति के तत्काल बाद यदि उन्हें उपयुक्त आवास उपलब्ध नहीं कराया जाएगा और उन्हें बहुत अधिक राशि के किराए वाले प्राइवेट आवास खोजने के लिए जाना पड़ेगा तो इससे इस सेवा में प्रवेश करने के इच्छुक लोग हतोत्साहित होंगे। यह प्रावधान करना भी उतना ही आवश्यक है कि इन न्यायिक सदस्यों को सामान्यतया अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए अन्त क्षेत्र कोटे में, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश (उस राज्य के जहां के वे निवासी हैं) नियुक्त करने पर विचार किया जाएगा और यदि किसी कारणवश यह व्यवहार्य न पाया जाए तो अनुच्छेद 217 के खण्ड 2 के उप खण्ड (ख), विस्तार (कक) और/अथवा उक्त खण्ड में जोड़े गए (ख) के साथ पठित, के अधीन इनकी नियुक्ति पर विचार किया जाना चाहिए। यदि ऐसा आश्वासन दिया जाता है तो ''बार'' के बहुत से सदस्य इस पद के लिए आकर्षित होंगे जो दक्ष व्यक्ति उपलब्ध कराने, जिन्हें उच्च न्यायालय में आने वाले केन्द्रीय उत्पादशुल्क और सीमाशुल्क के मामलों में विशेष ज्ञान प्राप्त है, की दिशा में एक अतिरिक्त लाभ होगा।

न्यायिक और प्रशासनिक सदस्यों की शीघ्र नियुक्ति एक और आवश्यकता है। यद्यपि यह आवश्यकता स्पष्ट है परन्तु वास्तव में व्यवहारिक तौर पर इसे पूरा नहीं किया गया है। इस संबंध में, अधिकरण के न्यायिक सदस्यों के रूप में कार्य करने के लिए जिला न्यायाधीशों को प्रतिनियुक्ति पर लेने के व्यवहार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। वे अपनी मूल सेवा में अपना धारणाधिकार रख सकते हैं ताकि पदोन्नति अथवा उच्च न्यायालय में नियुक्ति के उनके अवसर कम न हों।

(घ) उन मामलों में जहां केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम की धारा 35 छ और सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130 के अधीन उच्च न्यायालय को निर्देश किया जाता है वहां क्रमश: धारा 35 छ की उपधारा (1) और धारा 130 की उपधारा (1) के प्रावधान के अनुसार निर्देश करने के लिए अधिकरण को आवेदन करने की आवश्यकता को अभिमुक्त किया जा सकता है। धारा 35 छ और धारा 130 में ऐसी व्यवस्था करके संशोधन किया जा सकता है कि अधिकरण के निर्णय से व्यथित कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि अधिकरण के निर्णय से उत्पन्न विधि के प्रश्न को निर्दिष्ट करने के लिए अधिकरण को निर्देश दिया जाए। ऐसा आवेदन करने के लिए समय सीमा 6 माह रखी जा सकती हे जैसाकि अब उपर्युक्त धाराओं की उपधारा (3) में प्रावधान है। तथापि यह भी प्रावधान किया जाना चाहिए कि इस प्रकार उच्च न्यायालय को आवेदन करने वाले व्यक्ति को विधि के उन प्रश्नों को स्पष्ट रूप से बताना होगा जिन्हें वह उठाना चाहता है और उसे उठाए जाने वाले प्रश्नों से सम्बद्ध अधिकरण के निर्णय के पैराग्राफ भी विनिर्दिष्ट करने होंगे। इस प्रकार का प्रावधान इस तथ्य को देखते हुए आवश्यक है कि अधिकरण के निर्णय में विधि और तथ्य के बहुत से अन्य प्रश्नों पर भी विचार किया गया होगा।

(ङ) प्रत्येक उच्च न्यायालय में कम से कम एक न्यायपीठ ऐसी अवश्य होनी चाहिए जो आयकर अधिनियम, केन्द्रीय उत्पादशुल्क और नमक अधिनियम और सीमाशुल्क अधिनियम के अधीन उठने वाले मामलों की नियमित रूप से सुनवाई करे। बाद की दो अधिनियमितियों के अधीन उठने वाले मामलों को, जहां तक सम्भव हो, सुनवाई के मामले में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(च) अधिकरण की प्रत्येक न्यायपीठ का प्रधान उपाध्यक्ष होना चाहिए। इस प्रयोजन से जितनी भी अधिकरण की न्यायपीठ हो उतनी ही संख्या उपाध्यक्षों की होनी चाहिए। कुछ भी हो, मुम्बई, अहमदाबाद, चेन्नई और कलकत्ता जैसे महत्वपूर्ण केन्द्रों पर प्रत्येक केन्द्र में एक उपाध्यक्ष आवश्यक रूप में होना ही चाहिए।

(छ) अधिकरण में कार्य के अनुपात में ही न्यायपीठों की संख्या होनी चाहिए। क्योंकि अधिकरण के प्रत्येक सदस्य/न्यायपीठ से प्रति वर्ष एक विशिष्ट संख्या में मामलों के निपटान की अपेक्षा की जाती है, उपर्युक्त आधार पर ही न्यायपीठों की संख्या निश्चित की जानी चाहिए और इतनी ही न्यायपीठें स्थापित की जानी चाहिएं। वर्तमान बकाया मामलों की संख्या को देखते हुए, कुल 20 या 22 न्यायपीठ होनी चाहिएं। जैसाकि यहाँ ऊपर बताया गया है, प्रत्येक विगत वर्ष के साथ अधिकरण में दायर की गयी अपीलों की संख्या बढ़ती जा रही है—कम नहीं हो रही है।

(ज) वरिष्ठ विभागीय प्रतिनिधि और कनिष्ठ विभागीय प्रतिनिधि नियुक्त करते समय विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए। उनकी भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। केवल सक्षम और निष्ठावान व्यक्तियों को इस प्रकार पदाभिहित किया जाना चाहिए।

(झ) केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के संबंध में उपर्युक्त पैरा 4.9, 4.10, 4.11 और 4.13 में की गई सिफारिशें सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण पर भी लागू होंगी।

<u>अध्याय – छः</u>

आयकर अपील अधिकरण

6.1 जहां तक आय-कर अपील अधिकरण का संबंध है, आयोग का मत है कि अधिकरण के कार्यकरण में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नही हैं क्योंकि यह विगत कई दशाब्दियों से संतोषजनक रूप में कार्य कर रहा है। फिर भी हम एक सुधारात्मक उपाय का प्रस्ताव करना चाहते है अर्थात् उच्च न्यायालय को निर्देश करने के लिए सर्वप्रथम अधिकरण से आवेदन करने की आवश्यकता को त्याग दिया जाना चाहिए जैसाकि आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 की उपधारा (1) में प्रावधान है। प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है और ऐसी व्यवस्था करके बहुत सा समय बचाया जा सकता है कि अधिकरण के निर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसा अनुरोध करते हुए सीधा उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकेगा कि अधिकरण को विधि के उन प्रश्नों का उल्लेख करने का निर्देश दिया जाए जो उस विचार में (आवेदक के) अधिकरण के निर्णय से उत्पन्न हुए हैं। विधि संबंधी प्रश्नों की स्पष्ट उल्लेख करने, जो कोई व्यक्ति उठाना चाहता है, की वर्तमान प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए। आवेदक को यह भी निर्देश दिया जाना चाहिए कि वह अधिकरण के निर्णय के पैराओं को विनिर्दिष्ट करे जो उसके द्वारा उठाए गए विधि के प्रत्येक प्रश्न से संबंधित है। यह भी प्रावधान किया जाना चाहिए कि ऐसे आवेदन जैसे ही सुनवाई के लिए तैयार हो, उच्च न्यायालय में उपयुक्त न्यायपीठ के समक्ष, सूचीबद्ध किए जाएं। इस पर इस कारण से जोर दिया जा रहा है कि कतिपय न्यायालयों में धारा 256 (2) के अधीन आवेदन सुनवाई हेतु लिए जाने से पूर्व वर्षों तक लम्बित रखे जाते हैं।

6.2 यह भी देखा गया है कि कराधान के मामलों में बहुत से निर्धारितियों के मामले में प्रत्येक वर्ष बार-बार विधि का एक ही प्रश्न अन्तर्ग्रस्त रहता है जबकि विधि के प्रश्न उच्च न्यायालयों द्वारा अन्तिम रूप से निर्णय नहीं दे दिया जाता। इसके परिणामस्वरूप एक ही प्रश्न पर मामलों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि होती है और करों के भुगतान में भी अनिश्चितता की स्थिति पैदा होती है। विधि के उन आवर्ती प्रश्नों पर निर्धारिती के विरूद्ध निर्णय होने पर, विभिन्न शीर्षों के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा निश्चित की गई निर्धारिती द्वारा देय करों पर ब्याज की संचित राशि कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है, जिससे उद्योग को आघात पहुँचता है और कई मामलों में तो उद्योग ही बन्द हो जाते हैं। इसलिए, न्याय की मांग है कि विधि के सामान्य प्रश्नों पर बार-बार उठने वाले विवाद अन्तिम रूप से शीघ्रातिशीघ्र निर्णीत हो जाने चाहिएं।

इस समस्या का समाधान भी निकल सकता है जब आय-कर अपील अधिकरण का ध्यान ऐसे सामान्य प्रश्नों की ओर दिलाया जाए। इसलिए, आयकर अपील अधिकरण अनुसंधान अधिकारियों की सहायता से, उपर्युक्त पैरा 4.9 और 4.10 में विनिर्दिष्ट, समय-समय पर समाचार पत्रों में विज्ञापन देकर तथा नोटिस बोर्ड पर सूचित करके ऐसे सामान्य/आवर्ती प्रश्नों के बारे में निर्धारितियों/आवेदकों अथवा प्रत्यर्थी/राजस्व विभाग से आवेदन आमंत्रित कर सकता है। अनुसंधान अधिकारी न्यायालय को फाइलों से विधि के ऐसे सामान्य प्रश्नों को खोजकर आय-कर अपील अधिकरण के समक्ष रखेगा। अधिकरण को ऐसे प्रश्नों को प्राथमिकता के आधार पर निश्चित करना चाहिए। अधिकरण अपने निर्णय में सामान्य प्रश्न को शीघ्रता से लेने का उल्लेख कर सकते हैं ताकि उच्च न्यायालय भी मामले पर प्राथमिकता के आधार पर कार्यवाही की जा सके। इसी प्रकार उच्च न्यायालय भी अपने निर्णय में मामले को प्राथमिकता के आधार पर लेने का उल्लेख कर सकते हैं ताकि यदि मामला उच्चतम न्यायालय में जाता है तो उच्च न्यायालय भी मामले में शीघ्रता से निर्णय दे सके।

6.3 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरणों के बारे में उपर्युक्त पैरा 4.9, 4.10, 4.11 और 4.13 में की गयी सिफारिशें आय-कर अपील अधिकरण पर भी लागू होंगी।

कतिपय सामान्य प्रेक्षण

यह उल्लेख किया जा सकता है कि पहली प्रश्नावली और पुनरीक्षित प्रश्नावली तथा इन प्रश्नावलियों के अनुसरण में प्राप्त सुझाव दोनों ही में एक प्रमुख विषय जिस पर चर्चा हुई वह राष्ट्रीय कर न्यायालय (प्रत्यक्ष करों के लिए) तथा राष्ट्रीय अप्रत्यक्ष-कर न्यायालय (केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम तथा सीमाशुल्क अधिनियम के प्रयोजन से) की स्थापना इन मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता का पूर्णतया अपवर्जन करते हुए, है। यह विचार सर्वप्रथम तो इस कारण से कि केन्द्रीय उत्पादन शुल्क अधिनियम और सीमाशुल्क अधिनियम दोनों ही के अधीन महत्वपूर्ण मामलों अर्थात् वर्गीकरण और मूल्यांकन के मामलों में सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है और दूसरे एल. चन्द्र कुमार मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के कारण संगत नहीं है। इस निर्णय के अनुसार, जिसके महत्वपूर्ण पहलू यहाँ ऊपर विस्तार से बताए गए हैं, जहाँ ऐसे अधिकरणों का गठन किया जा सकता है, अनुच्छेद 226 तथा 227 के अधीन उच्च न्यायालयों द्वारा और अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन का अपवर्जन नहीं किया जा सकता जिसका यह अर्थ होगा कि ऐसे राष्ट्रीय न्यायालयों के आदेश भी देश के

विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन होंगे जब तक कि ऐसे राष्ट्रीय कर न्यायालय/राष्ट्रीय अप्रत्यक्षकर न्यायालय के आदेशों के विरूद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान न किया जाए और यह मांगे भी विचार के मुख्य प्रयोजन के प्रतिकूल ही होगी और यदि इस प्रकार की अपील का प्रवाधान नहीं किया जाता तो यह कहना न्यायोचित ही होगा कि ऐसे राष्ट्रीय अधिकरणों के विरूद्ध भी न्यायिक पुनर्विलोकन के उपचार का अपवर्जन नहीं किया जा सकता। इन्हीं कारणों से इन अधिकरणों के संबंध में इस रिपोर्ट में इस विचार का अनुसरण नहीं किया गया है।

अध्याय - सात

निष्कर्ष

7.1 पूर्ववर्ती अध्यायों में अन्तर्विष्ट चर्चा के आधार पर, आयोग का यह सुविचारित मत है कि एक सुदृढ़ न्याय परिदान प्रणाली बनाने हेतु, जो विधि सम्मत शासन को समर्पित किसी देश के कुशल प्रशासन के लिए अत्यन्त अनिवार्य है, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, केन्द्रीय उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अधिकरण के कार्यकरण में सुधार करने के लिए निम्नलिखित आमूल परिवर्तन तत्काल किए जाने की आवश्यकता है।

इस प्रकार पूर्ववर्ती अध्यायों में की गयी सिफारिशों का सारांश नीचे दिया जा रहा है :

7.2 भारत के संविधान के अनुच्छेद 323 के निर्देश से अधिनियमित प्रशासनिक अधिकरण आय नियम, 1985 के अधीन गठित प्रशासनिक अधिकरणों के बारे में भारत के विधि आयोग ने निम्नलिखित सिफारिश की है :—

(क) प्रशासनिक अधिकरणों की कार्यकुशलता में सुधार करने की दृष्टि से, सेवानिवृत्त अथवा सेवानिवृत्त होने वाले जिला न्यायाधीशों को न्यायिक सदस्यों के रूप में नियुक्त करने की वर्तमान प्रक्रिया पूर्णतया संतोषजनक नहीं है। ये जिला न्यायाधीश अपनी न्यायिक सेवाकाल के दौरान सेवा संबंधी मामलों के बारे में कार्यवाही नहीं करते हैं और क्योंकि उन्हें उनकी सेवा अवधि के अन्तिम चरण में नियुक्त किया जाता है अत: विधि की इस शाखा अर्थात् सेवा संबंधी विधिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने का न तो समय ही शेष रहता है और न ही उनकी इच्छा रहती है उन्हें दो या तीन वर्ष का समय मिलता है (यह भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि अखिल भारतीय न्यायिक अधिकारी ऐसोसियेशन के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए अधीनस्थ न्यायपालिका में सेवानिवृत्ति आयु 60 वर्ष है। यह स्पष्ट है कि असंतोषप्रद रिकार्ड के कारण जिन्हें 58 वर्ष की आयु के पश्चात् सेवा में बने रहने की अनुमति नहीं दी जाती है उन्हें प्रशासनिक अधिकरण में सदस्य के रूप में नियुक्त करने पर न तो विचार किया जाएगा और न ही वे सदस्य नियुक्त किए जाते हैं। इस दृष्टि से 45 से 50 वर्ष की आयु के बीच के बार काउंसिल के सदस्यों को नियुक्त करने पर विचार किया जाना चाहिए जिन्हें अपनी बुद्धिमत्ता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि इन न्यायिक सदस्यों को प्रोत्साहन देने के विचार से उच्च न्यायालयों द्वारा (उन राज्यों के जहाँ के वे निवासी हैं) उन्हें अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों के लिए सामान्यतया आरक्षित कोटे में उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के पदों पर नियुक्त करने पर विचार किया जाना चाहिए और यदि किन्हीं कारणों से ऐसा कर पाना व्यवहार्य नहीं पाया जाता है तो उनके मामलों पर अनुच्छेद 217 के उपखण्ड (ख) के खण्ड (2), स्पष्टीकरण (कक) और/अथवा उक्त खण्ड में जोड़े गए खण्ड (ख) के साथ पठित, के अन्तर्गत विचार किया जाना चाहिए। यदि इस प्रकार का आश्वासन पूरा किया जाता है तो "बार" के बहुत से सदस्य इन पदों के लिए आकर्षित होंगे। इससे कुशल सक्षम व्यक्ति, जिन्हें सेवा संबंधी मामलों में विशेष ज्ञान प्राप्त है उच्च न्यायालयों के लिए उपलब्ध हो सकेंगे। प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 8 में तदनुसार संशोधन किया जाना चाहिए। सदस्यों के मामलों में, आरम्भिक कार्यकाल 10 वर्ष रखा जाना चाहिए। जिसे पाँच वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है।

(ख) राज्य प्रशासनिक अधिकरणों में चेयरमैन के रूप में सेवानिवृत्त अथवा सेवानिवृत्त होने वाले न्यायाधीशों को नियुक्त करने की प्रक्रिया अधिक सफल सिद्ध नहीं हुई है। क्योंकि इन पदों के लिए सेवानिवृत्ति आयु 65 वर्ष है, इन पदों पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों को तीन वर्ष और कभी कभी इससे भी कम समय का कार्यकाल मिल पाता है। अधिक उपयुक्त होगा यदि उच्च न्यायालयों के उन न्यायाधीशों को, जिनकी सेवानिवृति में कम से कम एक वर्ष का समय शेष रहता है, इन पदों पर नियुक्त करने पर विचार किया जाए। इस प्रकार उन्हें चार वर्ष का कार्यकाल मिल जाएगा जिससे उन्हें अपने पर स्थिर होने के लिए पर्याप्त समय मिल पाएगा और वे अच्छा कार्य कर पायेंगे। साधारण रूप में, कोई प्रशासनिक सदस्य, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के उपाध्यक्ष पद पर अथवा राज्य प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

[उपर्युक्त पैरा 4.5 (ख)]

(ग) उच्च न्यायालय में प्रशासनिक अधिकरण के आदेश के विरुद्ध की गई अपील की खंड न्यायाधीश की जानी चाहिए। अपील उस उच्च न्यायालय में ही की जाएगी जिसके अधिकार क्षेत्र में निर्णय देने वाला अधिकरण जिसके आदेश के विरुद्ध अपील की जानी है, स्थित है। इस उपाय से एल. चन्द्र कुमार के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय की गम्भीर तथा प्रमुख आलोचना का भी निराकरण हो जाता है कि किसी प्राधिकरण द्वारा न्यायिक पुनरीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किए गए आदेश

58 LJ&CA/2000—7

की न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती। उक्त निर्णय के अनुसार अधिकरण का आदेश अपनी न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति का उपयोग करते हुए दिया गया है, यदि ऐसा है तो यह आदेश फिर से न्यायिक पुनरीक्षा का विषय नहीं बन सकता। आलोचकों का मत है कि न्यायिक पुनरीक्षा अपने स्वरूप, तत्व तथा अवधारणा की दृष्टि से प्रशासनिक तथा अन्य प्राधिकारियों के प्रशासनिक अथवा अर्ध-न्यायिक कार्यवाही के विरुद्ध होती है। अपील करने का उपचार न केवल अन्तिम आदेश अपितु अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध भी उपलब्ध होना चाहिए।

[उपर्युक्त पैरा 4.5 (ग)]

(घ) उपर्युक्त भाग (ग) में अन्तर्विष्ट सिफारिश के विकल्प के रूप में यह सिफारिश की जाती है कि सरकार प्रशासनिक अधिकरणों के आदेशों के विरुद्ध अपील स्वीकार करने के लिए एक राष्ट्रीय अपील प्रशासनिक अधिकरण गठित कर सकती है इस प्रकार के राष्ट्रीय अपील अधिकरण की न्यायपीठ उच्च न्यायालय की पद्धति के अनुसार ही देश के सभी महत्वपूर्ण केन्द्रों पर, यदि प्रत्येक राज्य की राजधानी में नहीं, होगी। ऐसे अपीलीय फोरम का अध्यक्ष उच्च न्यायालय का भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय का भूतपूर्व न्यायधीश और अन्य सदस्य उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायधीश, यथास्थिति, होंगे । ऐसे अधिकरण के आदेश के विरुद्ध केवल उच्चतम न्यायालय में ही अपील की जा सकेगी। उपभोक्त संरक्षण अधिनियम, 1986 के द्वारा बनाये गये राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद समाधान आयोग की भांति ही ऐसा न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि अपील फोरम के आदेश के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के प्रावधानों को प्रभावी नहीं बनाया जायेगा। यह प्रणाली सीमाशुल्क अधिनियम और केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम, जिनमें वर्गीकरण और मूल्यांकन के मामलों में सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क, स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रावधान है, के प्रावधानों के अनुरूप होगी। यदि ऐसा अपीलीय अधिकरण गठित किया जाता है तो प्रशासनिक अधिकरणों के आदेशों के विरुद्ध विभिन्न उच्च न्यायालयों में अनिर्णीत पड़ी रिट याचिकाएं अपील अधिकरण की उपयुक्त न्यायपीठ को अंतरित कर दी जायेगी और उन पर विधि अनुरूप कार्यवाही की जायेगी। यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय की अपील के अध्यधीन राष्ट्रीय अपीलीय अधिकरण के आदेश अन्तिम होंगे।

(पैरा 4.8 उपर्युक्त)

(ङ) अधिकरण में कार्यरत सभी व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण देना अनिवार्य है जैसाकि अध्याय छः में चर्चा की गई है।

(उपर्युक्त पैरा 4.6)

(च) चयन प्रक्रिया में बढ़ते जा रहे नैतिक मूल्यों के ह्रास, भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद से संघर्ष करने और उसे रोकने की दृष्टि से आयोग का यह सुविचारित मत है कि अधिकरण के लिए न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति (चेयरमैन तथा वाईस चेयरमैन के अतिरिक्त) एक उच्च स्तरीय लिखित परीक्षा और तत्पश्चात् व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से की जानी चाहिए । केवल लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर प्रत्याशी को साक्षात्कार के लिए चुना जाना चाहिए। लिखित परीक्षा तथा व्यक्तिगत साक्षात्कार के लिए अंकों का अनुपात क्रमश: 85 और 15 प्रतिशत होना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत साक्षात्कार तथा लिखित परीक्षा का रिकार्ड प्रमाण के रूप में कम से कम दो वर्ष की अवधि के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

अधिनियम की धारा 6(3)(ख) के अनुसार न्यायिक सदस्य निम्नलिखित दो श्रेणियों में से चुना जाना चाहिए। (क) कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा है या होने के लिए अर्हित है और (ख) भारतीय विधि सेवा का सदस्य रह चुका है और जिसके उस सेवा की श्रेणी-1 का पद कम से कम तीन वर्ष तक धारण किया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आयोग न्यायिक सदस्यों का चयन उच्च स्तरीय लिखित परीक्षा और इसके पश्चात् व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से करने की सिफारिश कर रहा है, यह आवश्यक है कि न्यायिक सदस्यों के रूप में योग्य व्यक्तियों के चयन हेतु विस्तृत विकल्प उपलब्ध होने चाहिएं। इस प्रकार सभी विधि अधिकारी (बिना पदनाम विचार) कम से कम तीन वर्ष तक भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समान किसी पद पर अथवा केन्द्रीय या राज्य सरकार में या केन्द्रीय/राज्य सरकार के स्वामित्व वाले किसी सार्वजनिक उपक्रम में किसी अन्य पद पर जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से कम न हो प्रतियोगी परीक्षा तथा न्यायिक सदस्य पर नियुक्ति के लिए पात्र समझे जाने चाहिएं। तद्नुसार यह सिफारिश की गई कि अधिनियम की धारा 6(3)(ख) में निम्नलिखित शब्दों का उपस्थापन किया जाना चाहिए :—

''विधि अधिकारी (पदनाम के विचार के बिना) कम से कम तीन वर्ष तक भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समान किसी पद पर अथवा केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार के अधीन अथवा केन्द्र/राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी सार्वजनिक उपक्रम में ऐसा कोई अन्य पद धारण कर चुका है जिसका वेतनमान भारत सरकार के संयुक्त सचिव के वेतनमान से कम नहीं है''।

(उपर्युक्त पैरा 4.7)

समय की मांग है कि मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाए। वे सभी मामले जिनमें विधि का एक या एक से अधिक समान प्रश्न उठते हैं, वे सभी मामले एक सामान्य निर्णय से निपटाए जा सकते हैं, ऐसे मामलों को एक साथ लेकर एक साथ सुनवाई की जानी चाहिए। इस सारत्व में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण तथा प्रस्तावित अपीलीय फोरम द्वारा अनुसंधान अधिकारी नियुक्त किए जाने चाहिए ताकि सामान्य मामलों का और न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों का पता लगाकर जो लम्बित मामलों के लिए बाध्यकारी है वे संबंधित अधिकरणों की इस संबंध में सहायता कर सकें। वे अधिकरणों के विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता बढ़ाने में और इस प्रकार उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकरणों के सहायक सिद्ध होंगे। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/राज्य प्रशासनिक अधिकरण तथा प्रस्तावित फोरम वादियों/प्रतिपक्षी से समय समय पर आवेदन आमंत्रित कर सकेंगे। तब अनुसंधान अधिकारी आवेदकों के दावों की जांच कर सकेंगे और न्यायोचित आदेश पारित करने हेतु न्यायपीठ के लिए अपनी टिप्पणी देंगे। फोरम मामलों को निपटाने से पूर्व उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के अनुसार, जो उनके लिए बाध्यकारी है, पक्षकारों को नोटिस जारी करेंगे। इसी प्रकार अनुसंधान अधिकारी विचाराधीन पड़े मामलों को समूहित करने का प्रयास करेंगे जिनपर एक साथ सुनवाई की जा सकेगी।

(उपर्युक्त पैरा 4.9 और 4.10)

(ज) अधिकरण द्वारा मामलों का निपटारा पक्षकारों द्वारा फाईल किये गये तथ्यों के आधार पर, चाहे वे डाक द्वारा ही उस रूप में जैसे कि पहले चर्चा की गई है, भेजे गये हो, किया जाना चाहिए।

यह देखा गया है कि पक्षकार तथा उनके वकील कई बार उच्चतम न्यायालयों के समक्ष ऐसे विवाद उठाते हैं कि यद्यपि निचले न्यायालय में उच्च न्यायालय का विशिष्ट निर्णय उद्धृत किया था फिर भी उसने अपने निर्णय में उसका कोई उल्लेख नहीं किया। न्याय प्रशासन के हित संवर्धन के उद्देश्य से, ताकि विधि सम्मत शासन को और सुदृढ़ बनाया जा सके, यह महसूस किया जाना है कि अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में बहस को आरम्भ से दोनों पक्षों का अपने लिखित तर्क-वितर्क यदि दोनों पक्ष चाहते हों, प्रस्तुत करने की व्यवस्था होनी चाहिए और बहस के अन्त में दोनों पक्ष उन मामलों की सूची प्रस्तुत करेंगे जो सुनवाई के दौरान उन्होंने अधिकरण के समक्ष उद्धृत किए हैं। इस प्रक्रिया से उन मुद्दों पर कोई विवाद नहीं उठेगा और पीठासीन अधिकारी उच्चतर न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि का पालन करेंगे और पक्षकार परेशानी तथा विधि के प्रशासन में भ्रम से बचेंगे।

[उपर्युक्त पैरा 4.11]

(झ) अधिकरणों के सेवा निवृत सदस्यों की न्यायपीठ को अधिकरणों के समक्ष लम्बित पड़े पुराने मामलों का निपटाने के लिए उपयोग किया जा सकता है और इसमें भवन, ग्रन्थालय-आदि पर कोई अतिरिक्त लागत नहीं आयेगी जैसाकि पहले चर्चा की जा चुकी है।

(उपर्युक्त पैरा 4.12)

(ञ) मुकदमों की संख्या को कम करने के लिए सरकार अथवा सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा एक उपयुक्त वाद नीति तथा तन्त्र बनाया जाना चाहिए।

(उपर्युक्त पैरा 4.13)

(त) न टिक सकने वाले और तुच्छ प्रतिरक्षा के मामलों में अधिकरण द्वारा खर्च की मात्रा अधिनिर्णीत की जानी चाहिए और उसका लाभ विरोधी पक्षकार को दिया जाना चाहिए। इससे तुच्छ प्रतिरक्षा के मामले दायर करने की प्रवृति पर रोक लगेगी।

(उपर्युक्त पैरा 4.14)

(थ) केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण/उच्च न्यायालय द्वारा विरोधी निर्वचनों को आरम्भ में ही समाप्त करने के लिए, जिस प्रकार पहले चर्चा की जा चुकी है, एक तन्त्र विकसित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

(उपर्युक्त पैरा 4.15)

(द) आयोग ने व्यथित पक्षकार को सुने जाने के अधिकार के बारे में अधिकरण की अनुमति से आदेश के पुनर्विलोकन के लिए और निर्णय से प्रभावित परन्तु गैर पक्षकार द्वारा पुनर्विलोकन के आधार बताते हुए आवेदन करने की सिफारिश की है।

(उपर्युक्त पैरा 4.16)

(ढ़) स्वतंत्रता, सगमता/पारदर्शिता, विशिष्ट ज्ञान, प्रतिनिधित्व, कार्यकुशलता तथा उत्तरदायित्व के बेहतर स्तर सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्रशासनिक न्याय प्रणाली में सुधार किया जाना चाहिए।

(उपर्युक्त पैरा 4.17)

7.3 केन्द्रीय उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के संबंध में आयोग ने निम्नलिखित सिफारिश की है :—

(क) कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में तभी नियुक्त किया जा सकेगा जब वह किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश है या रहा है। वह अपनी कार्यकुशलता, निष्ठा और कठिन परिश्रम के लिए विख्यात होना चाहिए। उसे अन्य परिलब्धियों तथा सुविधाओं के अतिरिक्त, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में जिनका वह हकदार था, नियुक्ति के तुरन्त पश्चात उसके पदत्तर के अनुरूप नई दिल्ली में आवास उपलब्ध कराया जाना चाहिए । अध्यक्ष का चयन भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश तथा उच्चतम न्यायालय के दो अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा किया जाना चाहिए। परम्परा के रूप में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अध्यक्ष की सेवानिवृत्ति और उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बीच कोई समय अन्तराल न रहे। जब कोई पदासीन या सेवानिवृत उपयुक्त मुख्य न्यायाधीश उपलब्ध न हो केवल तभी उच्च न्यायालय के अपेक्षित योग्यता रखने वाले वरिष्ठ पीठासीन या सेवानिवृत न्यायाधीश को नियुक्त करने पर विचार किया जाना चाहिए। एक कुशल और प्रभावी अध्यक्ष ही अधिकरण की कार्यप्रणाली में बड़े पैमाने पर सुधार कर सकता है—यह अनुभव प्रमाणित तथ्य है।

(उपर्युक्त पैरा 5.1 क)

(ख) सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 129 में संशोधन की अपेक्षा की गई है। अधिकरण के अध्यक्ष की नियुक्ति ऊपर बताए गए रूप में सीधी नियुक्त होनी चाहिए जब कि धारा 129 में, जैसी कि यह वर्तमान में है अधिकरण के सदस्यों में से एक सदस्य को अधिकरण का अध्यक्ष नियुक्ति करने की अवधारणा है। जबकि उपाध्यक्ष की नियुक्ति सदस्यों में से की जा सकती है। अधिकरण के अध्यक्ष का चयन सीधे पदासीन अथवा सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत होने वाले उच्च सेवानिवृत वरिष्ठ न्यायाधीश में से किया जाना चाहिए।

(उपर्युक्त पैरा 5.1 ख)

(ग) अधिकरण में न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति के मामले में जहां तक भी संभव हो आयु वर्ग के बीच के सदस्यों की नियुक्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। उनकी नियुक्ति किसी शहर विशेष में हो जाने के तुरंत बाद उन्हें सरकारी आवास उपलब्ध कराया जाना चाहिए और उन्हें वे सभी परिलब्धियां और सुविधाएं मिलनी चाहिए जो उनके पद के लिए स्वीकार्य है। किसी स्थान विशेष पर उनकी नियुक्ति के तत्काल बाद यदि उन्हें उपयुक्त आवास उपलब्ध नहीं कराया जाएगा और उन्हें बहुत अधिक राशि के किराए वाले प्राईवेट आवास खोजने के लिए जाना पड़ेगा तो इससे इस सेवा में प्रवेश करने के इच्छुक लोग हतोत्साहित होंगे। यह प्रावधान करना भी उतना आवश्यक है कि इन न्यायिक सदस्यों को समान्यतया अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए अंतक्षेत्र कोटे में, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश (उस राज्य के जहां के वे निवासी है) नियुक्त करने का विचार किया जाएगा और यदि किसी कारणवश यह व्यवहार्य न पाया जाए तो अनुच्छेद 217 के खण्ड 2 के उप खंड (ख), विस्तार (कक) और/अथवा उक्त खंड में जोड़े गए (ख) के साथ पठित के अधीन इनकी नियुक्ति पर विचार किया जाना चाहिए। यदि ऐसा आश्वासन दिया जाता है तो ''बार'' के बहुत से सदस्य इस पद के लिए आकर्षित होगे जो दक्ष व्यक्ति उपलब्ध कराने, जिन्हें उच्च न्यायालय में आने वाले केन्द्रीय उत्पादशुल्क और सीमाशुल्क के मामलों में विशेष ज्ञान प्राप्त है, की दिशा में एक अतिरिक्त लाभ होगा।

न्यायिक और प्रशासनिक सदस्यों की शीघ्र नियुक्ति एक और आवश्यकता है। यद्यपि यह आवश्यकता स्पष्ट है परन्तु वास्तव में व्यावहारिक तौर पर इसे पूरा नहीं किया गया है। इस संबंध में, अधिकरण के न्यायिक सदस्यों के रूप में कार्य करने के लिए जिला न्यायाधीशों को प्रतिनियुक्ति पर लेने के व्यवहार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। वे अपनी मूल सेवा में अपना धारणाधिकार रख सकते है ताकि पदोन्नति अथवा उच्च न्यायालय में नियुक्ति के उनके अवसर कम न हों।

(उपर्युक्त पैरा 5.1 ग)

(घ) उन मामलों में जहां केन्द्रीय उत्पादशुल्क अधिनियम की धारा 35छ सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130 के अधीन उच्च न्यायालय को निर्देश किया जाता है वहां क्रमश: धारा 35छ की उपधारा (1) और धारा 130 की उपधारा (1) के प्रावधान के अनुसार निर्देश करने के लिए अधिकरण को आवेदन करने की आवश्यकता को अभिमुक्त किया जा सकता है। धारा 35छ और धारा 130 में ऐसी व्यवस्था करके संशोधन किया जा सकता है कि अधिकरण के निर्णय से व्यथित कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि अधिकरण के निर्णय से उत्पन्न विधि के प्रश्न को निर्दिष्ट करने के लिए अधिकरण को निर्देश दिया जाए। ऐसा आवेदन करने के लिए समय सीमा 6 माह रखी जा सकती है जैसाकि अब उपर्युक्त धाराओं की उपधारा (3) में प्रावधान है। तथापि यह भी प्रावधान किया जाना चाहिए कि इस प्रकार उच्च न्यायालय को आवेदन करने वाले व्यक्ति को विधि के उन प्रश्नों को स्पष्ट रूप से बताना होगा जिन्हें वह उठाना चाहता है और उसे उठाए जाने वाले प्रश्नों से सम्बद्ध अधिकरण के निर्णय के

पैराग्राफ भी विनिर्दिष्ट करने होंगे। इस प्रकार का प्रावधान इस तथ्य को देखते हुए आवश्यक है कि अधिकरण के निर्णय में विधि और तथ्य के बहुत से अन्य प्रश्नों पर भी विचार किया गया होगा।

(उपर्युक्त पैरा 5.1 घ)

(ङ) प्रत्येक उच्च न्यायालय में कम से कम एक न्यायपीठ ऐसी अवश्य होनी चाहिए जो आयकर अधिनियम, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और नमक अधिनियम और सीमाशुल्क अधिनियम के अधीन उठने वाले मामलों की नियमित रूप से सुनवाई करे। बाद की दो अधिनियमितियों के अधीन उठने वाले मामलों को, जहां तक सम्भव हो, सुनवाई के मामले में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(उपर्युक्त पैरा 5.1 ङ)

(च) अधिकरण की प्रत्येक न्यायपीठ का प्रधान उपाध्यक्ष होना चाहिए। इस प्रयोजन से जितनी भी अधिकरण की न्यायपीठ हो उतनी ही संख्या उपाध्यक्षों की होनी चाहिए। कुछ भी हो, मुम्बई, अहमदाबाद, चेन्नई और कलकत्ता जैसे महात्वपूर्ण केन्द्रों पर प्रत्येक केन्द्र में एक उपाध्यक्ष आवश्यक रूप में होना ही चाहिए।

(उपर्युक्त पैरा 5.1 च)

(छ) अधिकरण में कार्य के अनुपात में ही न्यायपीठों की संख्या होनी चाहिए। क्योंकि अधिकरण के प्रत्येक सदस्य/न्यायपीठ से प्रति वर्ष एक विशिष्ट संख्या में मामलों के निपटान की अपेक्षा की जाती है, उपर्युक्त आधार पर ही न्यायपीठों की संख्या निश्चित की जानी चाहिए और इतनी ही न्यायापीठें स्थापित कर जानी चाहिएं। वर्तमान बकाया मामलों की संख्या को देखते हुए, कुल 20 या 22 न्यायपीठ होनी चाहिएं। जैसाकि यहां उपर बताया गया है, प्रत्येक विगत वर्ष के साथ अधिकरण में दायर की गयी अपीलो की संख्या बढंती जा रही है—कम नहीं हो रही है।

(उपर्युक्त पैरा 5.1छ)

(ज) वरिष्ठ विभागीय प्रतिनिधि और कनिष्ठ विभागीय प्रतिनिधि नियुक्त करते समय विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए। उनकी भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। केवल सक्षम और निष्ठावान व्यक्तियों को इस प्रकार पदाभिहित किया जाना चाहिए।

(उपर्युक्त पैरा 5.1ज)

(झ) केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के संबंध में उपर्युक्त पैरा 4.9, 4.10, 4.11 और 4.13 में की गई सिफारिशें सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण पर भी लागू होंगी।

(उपर्युक्त पैरा 5.1झ)

7.4 जहाँ तक आय-कर अपील अधिकरण का संबंध है, आयोग का मत है कि अधिकरण के कार्यकरण में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह विगत कई दशाब्दियों से संतोषजनक रूप में कार्य कर रहा है। फिर भी हम एक सुधारात्मक उपाय का प्रस्ताव करना चाहते हैं अर्थात् उच्च न्यायालय को निर्देश करने के लिए सर्वप्रथम अधिकरण से आवेदन करने की आवश्यकता को त्याग दिया जाना चाहिए जैसाकि आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 की उपधारा (1) में प्रावधान है। प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है और ऐसी व्यवस्था करके बहुत सा समय बचाया जा सकता है कि अधिकरण के निर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसा अनुरोध करते हुए सीधा उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकेगा कि अधिकरण को विधि के उन प्रश्नों का उल्लेख करने का निर्देश दिया जाए जो उस विचार में (आवेदक के) अधिकरण के निर्णय से उत्पन्न हुए हैं। विधि संबंधी प्रश्नों की स्पष्ट उल्लेख करने, जो कोई व्यक्ति उठाना चाहता है, की वर्तमान प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए। आवेदक को यह भी निर्देश दिया जाना चाहिए कि वह अधिकरण के निर्णय के पैराओं को विनिर्दिष्ट करे जो उसके द्वारा उठाए गए विधि के प्रत्येक प्रश्न से संबंधित है। यह भी प्रावधान किया जाना चाहिए कि ऐसे आवेदन जैसे ही सुनवाई के लिए तैयार हो, उच्च न्यायालय मे उपयुक्त न्यायपीठ के समक्ष, सूचीबद्ध, किए जाएं। इस पर इस कारण से जोर दिया जा रहा है कि कतिपय न्यायालयों में धारा 256(2) के अधीन आवेदन सुनवाई हेतु लिए जाने से पूर्व वर्षों तक लम्बित रखे जाते हैं।

7.4.1. यह भी देखा गया है कि कराधान के मामलों में बहुत से निर्धारितियों के मामले में प्रत्येक वर्ष बार-बार विधि का एक ही प्रश्न अन्तर्ग्रस्त रहता है जबकि विधि के प्रश्न उच्च न्यायालयों द्वारा अन्तिम रूप से निर्णय नहीं दे दिया जाता। इसके परिणामस्वरुप एक ही प्रश्न पर मामलों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि होती है और करों के भुगतान में भी अनिश्चिता की स्थिति पैदा होती है। विधि के उन आवर्ती प्रश्नों पर निर्धारिती के विरूद्ध निर्णय होने पर, विभिन्न शीर्षों के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा निश्चित की गई निर्धारिती द्वारा देय करों पर ब्याज की संचित राशि कभी-कभी इतनी अधिक हो जाती है, जिससे उद्योग को आघात पहुँचता है और कई मामलों में तो उद्योग ही बन्द हो जाते हैं। इसलिए, न्याय की मांग है कि विधि के सामान्य प्रश्नों पर बार बार उठने वाले विवाद अन्तिम रूप से शीघ्रातिशीघ्र निर्णीत हो जाने चाहिए।

इस समस्या का समाधान भी निकल सकता है जब आय-कर अपील अधिकरण का ध्यान ऐसे सामान्य प्रश्नों की ओर दिलाया जाए। इसलिए, आयकर अपील अधिकरण, अनुसंधान अधिकारियों की सहायता से, उपर्युक्त पैरा 4.9 और 4.10 में विनिर्दिष्ट, समय-समय पर समाचार पत्रों में विज्ञापन देकर तथा नोटिस बोर्ड पर सूचित करके ऐसे सामान्य/आवर्ती प्रश्नों के बारे में निर्धारितियों/आवेदकों अथवा प्रत्यर्थी/राजस्व विभाग से आवेदन आमंत्रित कर सकता है। अनुसंधान अधिकारी न्यायालय को फाइलों से विधि के ऐसे सामान्य प्रश्नों को खोजकर आय-कर अपील अधिकरण के समक्ष रखेगा। अधिकरण को ऐसे प्रश्नों को प्राथमिकता के आधार पर निश्चित करना चाहिए। अधिकरण अपने निर्णय में सामान्य प्रश्न को शीघ्रता से लेने का उल्लेख कर सकते हैं ताकि उच्च न्यायालय भी मामले पर प्राथमिकता के आधार पर कार्यवाही की जा सके। इसी प्रकार उच्च न्यायालय भी अपने निर्णय में मामले को प्राथमिकता के आधार पर लेने का उल्लेख कर सकते हैं ताकि यदि मामला उच्चतम न्यायालय में जाता है तो उच्चतम न्यायालय भी मामले में शीघ्रता से निर्णय दे सके।

(उपर्युक्त पैरा 6.2)

7.4.2 केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरणों के बारे में उपर्युक्त पैरा 4.9, 4.10, 4.11 और 4.13 मे की गयी सिफारिशें आय-कर अपील अधिकरण पर भी लागू होंगी।

(उपर्युक्त पैरा 6.3)

तद्नुसार हम सिफारिश करते हैं।

ह०

(न्यायाधीश बी०पी० जीवन रेड्डी) (सेवानिवृत)

चेयरमैन

ह०

(न्यायाधीश, लीला सेठ) (सेवानिवृत)

सदस्य

ह०

(डा० एन०एम० घटाटे)

सदस्य

ह०

(आर०एल० मीना)

सदस्य-सचिव

दिनाँक : 29 जुलाई, 1998

उपबन्ध-1

के.एन. सिंह

भारत के सेवानिवृत मुख्य न्यायाधीश

विधि आयोग

भारत सरकार

शास्त्री भवन

नई दिल्ली-110001

दूरभाष कार्यालय 38 44 75

निवास 3019465

अप्रैल 29, 1994

आ.शा. सं. 6 (3) (21)/93-एल.सी. (एल.सी.)

मुख्य न्यायाधीश महोदय,

मैंने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और आयकर अपील अधिकरण तथा सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के कार्यकरण के संबंध में आपके बहुमूल्य विचार जानने के लिए एक प्रश्नावलि भेजी है। विवरण, पत्र तथा प्रश्नावलि में दिया गया है।

मैं आपका आभारी हूंगा यदि आप पत्र तथा प्रश्नावलि अपने न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों को परिचालित करेंगे ताकि वे इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत कर सकें। मुझे ज्ञात है कि इससे आपको असुविधा होगी परन्तु आपके बहुमूल्य सहयोग के अभाव में इस मामले पर गहन अध्ययन करने का कार्य पूरा नहीं कर पायेगा।

सादर,

भवदीय,

ह.

(के.एन. सिंह)

सेवा में

सभी उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश

29 अप्रैल, 1994

आ.शा. सं. 6 (3)(21)/93-एल.सी. (एल.एस.)

महोदय,

संविधान में 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधन किया गया और अनुच्छेद 323-क और 323-ख प्रतिस्थापित किए गए जिनमें विधि द्वारा संघ और राज्यों के लोकसेवकों के सेवा संबंधी मामलों के संबंध में विवादों और शिकायतों के न्यायनिर्णयन और उन पर नियंत्रण रखने हेतु, प्रशासनिक अधिकरणों के गठन के लिए कानून बनाने हेतु संसद और राज्य विधानमण्डलों को शक्ति प्रदान की गई। संसद ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के गठन के लिए प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 अधिनियमित किया। कुछ राज्यों ने भी सेवा संबंधी मामलों के न्यायनिर्णयन और सुनवाई के लिए राज्य प्रशासनिक अधिकरणों का गठन किया है। ये अधिकरण उसी अधिकारिता और शक्ति का उपयोग करते हैं जो पहले उच्च न्यायालय सहित न्यायालयों द्वारा उपयोग की जाती थी और उनके आदेशों की उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक पुनरीक्षा भी नहीं की जा सकती और व्यथित पक्षकार को अधिकरण के आदेश के विरुद्ध केवल संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन एकमात्र उपचार उपलब्ध है। इन अधिकरणों के चेयरमैन सेवानिवृत न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश है और वाइस चेयरमैन भारत सरकार के सचिव तथा अपेक्षित अनुभव प्राप्त समान पद धारक होते हैं। चेयरमैन, वाइस चेयरमैन तथा सदस्यों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा मनोनीत न्यायपीठ के किसी न्यायाधीश की अध्यक्षता में गठित एक समिति द्वारा की जाती है। साधारणतया अधिकरण में एक न्यायिक अधिकारी और एक प्रशासनिक सदस्य होता है और

इसका प्रशासनिक नियंत्रण कार्यपालिका में निहित है। इन अधिकरणों के आदेश संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष अनुमति याचिका के अध्यधीन अन्तिम है।

जहाँ तक आयकर अपील अधिकरण का संबंध है, आयकर अधिनियम की धारा 256 के अधीन उसके आदेशों की उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनरीक्षा की जा सकती है, विधि संबंधी प्रश्न उच्च न्यायालयों को निर्देश दे दिए जाते हैं। कर संबंधी मामलों में किए गए निर्देश बड़ी संख्या में उच्च न्यायालयों में कई वर्षों तक लम्बित पड़े रहे, निर्धारितियों से कर की राशियाँ वसूल करने में राजस्व के सामने बड़ी कठिनाइयाँ आयीं। भारत के विधि आयोग ने अपनी 115वीं रिपोर्ट में कर संबंधी कानूनों के कार्यान्वयन के मामले में एक अखिल भारतीय दृष्टिकोण लागू करने, विरोधी निर्णयों तथा उच्च न्यायालयों को निर्दिष्ट मामलों में विलम्ब से बचने के लिए अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाले केन्द्रीय कर न्यायालयों के गठन की सिफारिश की। भारत सरकार द्वारा गठित कर-सुधार समिति ने भी एक केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित करने की सिफारिश की है। प्रस्तावित केन्द्रीय कर न्यायालय के निर्णयों की उच्च न्यायालयों में न्यायिक पुनरीक्षा नहीं की जाएगी।

सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 129 के अधीन सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण का गठन किया गया। धारा 130 के अधीन उच्च न्यायालय के निर्देश पर किए गए आदेश के अधीन उसके निर्णय अन्तिम हैं। सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के अध्यक्ष की नियुक्ति और उसके कार्यकरण का मामला आर. के. जैन बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1993 सु. का. 1769 मामले में विचार हेतु उच्चतम न्यायालय के सामने आया। नियुक्ति, चयन और सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के कार्यकरण पर विचार करते हुए, न्यायालय ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, आयकर अपील अधिकरण सहित अन्य अधिकरणों में नियुक्तियों और अधिकरणों के कार्यकरण का भी उल्लेख किया। उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की :—

> ''अधिकरणों द्वारा न्याय परिदान प्रणाली से अभी बहुत कुछ अपेक्षित है। न्यायिक न्यायनिर्णयन एक विशिष्ट प्रक्रिया है और इसे अधिवक्ता, न्यायाधीशों द्वारा कुशलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है। अनुच्छेद 136 के अधीन विशेषानुमति याचिका पर उच्चतम न्यायालय में अपील करना भी महंगा और प्रतिबंधात्मक प्रमाणित हुआ है और पक्षकारों के लिए दूरी के कारण उच्चतम न्यायालय तक पहुँचना भी निरन्तर अवरोधक बना हुआ है। अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत अधीकरण के आदेश के विरुद्ध संबंधित उच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ में विधि संबंधी प्रश्नों पर अपील करने से उन लोगों की न्याय प्राप्त करने की उग्र भावना शान्त होगी जिनके लिए उच्चतम न्यायालय तक पहुँच पाना संभव नहीं है। अधिकरण के सदस्यों के रूप में बार के सदस्यों को नियुक्त करने तथा अधिकरण की कार्य प्रणाली पर नए सिरे से विचार करने तथा उस पर निरन्तर निगरानी रखने की आवश्यकता है। भारत का विधि आयोग जैसा निकाय सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण को आयकर अपील अधिकरण की ही भाँति विधि और न्याय विभाग के नियंत्रणाधीन लाने की वांछनीयता सहित इस विषय में गहन अध्ययन करेगा और भारत सरकार को उपयुक्त सिफारिश करेगा और भारत सरकार अवरोधों और कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक विधान बनाने हेतु उपयुक्त कदम उठाएंगे और न्यायिक पुनर्विलोकन को प्रभावकारी, कम खर्चीला तथा संतोषजनक बनाने के लिए अधिकरणों को प्रभावी तथा कुशल बनाएगी।''

उच्चतम न्यायालय ने आगे यह विचार व्यक्त किया कि ये अधिकरण अपनी संरचना, सदस्यों की स्थिति तथा कार्यपालिका के नियंत्रण के कारण न्यायालयों के समान स्वतंत्र निकाय नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न विधियों के अधीन अधिकरणों के गठन के बारे में उनकी स्वतंत्रता सुनिश्चित करने ताकि इन अधिकरणों के प्रति जनता का विश्वास बढ़ सके और अधिकरणों के निष्पादन की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके, भार के विधि आयोग द्वारा गहन तथा विस्तृत अध्ययन किए जाने का निर्देश दिया।

उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में भारत के विधि आयोग ने अधिकरणों के कार्यकरण को प्रभावी तथा कुशल बनाने तथा जनता को शीघ्र तथा कम खर्चीला न्याय उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार को अपने सुझाव देने के प्रयोजन से अधिकरणों के बारे में गहन अध्ययन किया है। यद्यपि बहुत से अधिकरण कार्यरत है, इस समय विधि आयोग ने अपने अध्ययन का क्षेत्र सेवा संबंधी मामलों पर विचार करने वाले अधिकरणों, आयकर अपील अधिकरण, तथा सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण तक सीमित रखा है। इस संबंध में आयोग ने माननीय न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, न्यायविदों, शिक्षाविदों तथा विभाग के अधिकारियों के विचार जानने हेतु दो प्रकार की प्रश्नावलियाँ, एक सेवा संबंधी अधिकरणों के कार्यकरण के संबंध में और दूसरी आयकर अपील अधिकरण तथा सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के कार्यकरण के संबंध में, तैयार की है क्योंकि प्राप्त प्रतिक्रियाओं से आयोग को अपनी सिफारिशें तैयार करने में सहायता मिलेगी। हम दोनों प्रश्नावलियों की एक-एक प्रति आपके विचार और अध्ययन हेतु संलग्न कर रहे हैं।

अतः अनुरोध है कि आप अपने बहुमूल्य समय से थोड़ा समय निकाल कर प्रश्नों में उठाए गए विषयों पर अपने विचार शीघ्र ही, एक माह की अवधि में, भेजने का कष्ट करेंगे।

आपके सहयोग की आशा में,

सादर,

भवदीय

सेवा अधिकरणों पर प्रश्नावलि

1. क्या आप केन्द्रीय तथा राज्य प्रशासनिक अधिकरणों के कार्यकरण से सन्तुष्ट हैं ? यदि नहीं, तो कृपया इसके कारण बताएं।

2(क) क्या आपके विचार में न्यायिक और प्रशासनिक सदस्यों से गठित अधिकरणों के गठन की वर्तमान प्रणाली संतोषप्रद है और कुशलतापूर्वक कार्यकर रही है ? यदि नहीं, तो कृपया आप कारण बताएं और अपने सुझाव दें।

2(ख) क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि इन अधिकरणों में सदस्यों के रूप में केवल न्यायाधीश और न्यायिक अधिकारी होने चाहिए प्रशासनिक सदस्य नहीं ? यदि हाँ, तो कृपया कारण बताएँ।

3. क्या आपके विचार में वर्तमान रूप में गठित सेवा अधिकरण पक्षकारों की आवश्यकताओं को संतोषप्रद रूप में पूरा कर रहे हैं ? क्या यह कहना ठीक है कि वर्तमान रूप में गठित अधिकरण उच्च न्यायालयों के अच्छे प्रतिस्थानी है ? यदि नहीं, तो कृपया कारण बताएं।

4(क) इस समय अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील की व्यवस्था नहीं है परन्तु संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील सीधे उच्चतम न्यायालय में दायर की जाती है जिसमें शीर्ष संवैधानिक न्यायालय का कार्यभार बहुत बढ रहा है। क्या यह प्रणाली चलती रहनी चाहिए ? यदि नहीं, तो आप इसमें किन संशोधनों का सुझाव देंगे ?

4(ख) संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत अधिकरण के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील दायर करने वाले पक्षकार को बहुत अधिक व्यय का भार उठाना पड़ता है और वेतन वृद्धि, वरिष्ठता, पदोन्नति, सेवा नियमों का निर्वाचन आदि के बारे में विवादों से उत्पन्न होने वाले सेवा संबंधी छोटे मोटे मामलों में भी पक्षकार को दूरस्थ स्थानों से पर्याप्त राशि व्यय करके दिल्ली आना पड़ता है। क्या इस स्थिति के लिए प्रणाली में कोई अपीलीय फोरम बनाकर किसी परिवर्तन की आवश्यकता है ? यदि हाँ, तो किस प्रकार से ?

5(क) क्या आप इस विचार से सहमत है कि अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध तथ्यों और विधि संबंधी प्रश्नों के बारें में एक ही अपील होनी चाहिए ? यदि हां, तो उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय अथवा एक पृथक अपील अधिकरण में से किस प्राधिकरण के समक्ष ?

5(ख) क्या आप सहमत है कि मामलों को शीघ्र निपटाने के विचार से तथ्य तथा विधि संबंधी प्रश्नों पर अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में चलनी चाहिए और उच्च न्यायालयों को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के कर्मचारियों के केवल सेवा संबंधी मामलों पर विचार करने के लिए स्थायी सेवा न्यायपीठ करनी चाहिए ?

5(ग) यदि आप उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर किए जाने से सहमत नहीं हैं तो क्या आप अधिकरण के आदेशों के विरूद्ध अपील दायर करने और उनके सुने जाने के लिए क्षेत्रीय आधार पर न्यायपीठों की स्थापना के साथ अपीलीय अधिकरण के गठन के सुझाव से सहमत हैं ?

6. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि अधिकरणों के बाहुल्य से भारत में विधि की एकरूपता नष्ट होती है ? यदि हाँ, तो कृपया कारण बताएं।

7. क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि अधिकरण के अध्यक्ष/उपाध्यक्ष और सदस्यों का चयन केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के मामले में भारत के मुख्य न्यायधीश द्वारा और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के मामले में संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा या संबंधित मुख्य न्यायाधीश द्वारा गठित एक समिति के द्वारा किया जाना चाहिए ? यदि हाँ, तो कृपया कारण बताएं।

8. क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के लिए प्रशासनिक मंत्रालय विधि मंत्रालय होना चाहिए ?

9. क्या आप ''सेवा संबंधी मामलों'' की परिभाषा में किसी परिवर्तन का सुझाव देंगे ?

10. क्या आप कोई अन्य सुझाव देना चाहते हैं ?

सेवा अधिकरणों पर अतिरिक्त प्रश्नावली

1. क्या प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 8 के साथ पठित धारा 6 के अधीन न्यायिक सदस्य की नियुक्ति के अर्हता निर्धारित करने वाले वर्तमान प्रावधान से कि "कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, रहा है या होने के लिए अर्हित है ·······"

"और आयु प्राप्त करने के बाद पद धारण नहीं करेगा ······

(ख) सदस्य की दशा में, बासठ वर्ष की आयु"

किसी उच्च न्यायालय के पदासीन न्यायाधीश को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में आने के लिए कोई प्रोत्साहन मिलता है ?

1(क) क्या धारा 6 में आये "या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए अर्हित है " शब्दों से केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण को उच्च न्यायालय का वास्तविक अनुकल्प बनाने के प्रयोजन को बल मिला है ?

1(ख) क्या उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को नियुक्ति के लिए पात्र मानने वाले अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों से केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की कार्यकुशलता, प्रभावशालिता, निष्ठा जैसे स्तरमान उच्च न्यायालय के स्तरमानों के समान न केवल स्वरूप और विधिवत अपितु अन्तर्वस्तु में और वस्तुत अनुरक्षित रहते हैं ?

1(ग) क्या वर्तमान प्रशासनिक सदस्य केवल कर-निर्धारक मात्र होंगे अथवा केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सदस्यों के रूप कार्य करते रहेंगे ?

2. क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के माध्यम से वर्तमान न्याय परिदान प्रणाली से पक्षकारों में विश्वास पैदा हुआ है, यदि नहीं, तो कृपया कारण बताएं ?

3. क्या आपके विचार से अधिकरण के सदस्यों को कार्यकारी दबाव अथवा प्रभाव से स्वतंत्र होने का सम्मान, शक्ति के अन्य केन्द्रों से निर्भयता, आर्थिक अथवा राजनैतिक तथा उनके वर्ग द्वारा अर्जित और पोषित पक्षपात से स्वतन्त्रता प्राप्त है ?

4. क्या अधिकरणों के गठन और कार्यकरण को पुनरीक्षा के अधीन रखने, तथा ऐसे विशेष मामलों पर विचार करने तथा रिपोर्ट करने तथा ऐसे मामले निर्दिष्ट करने हेतु कोई सांविधिक फोरम होना चाहिए, यदि हाँ, तो इस प्रकार फोरम का स्वरूप और संरचना किस प्रकार की होनी चाहिए ?

आय-कर तथा सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण पर प्रश्नावली

1. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण/आय-कर अपील अधिकरण के माध्यम से कार्यरत न्याय परिदान प्रणाली में न्याय चाहने वाले लोगों में निष्ठा और विश्वास पैदा किया है कि ये तंत्र न्यायिक और निष्पक्ष दृष्टिकोण रखते हुए और विशेषज्ञ तंत्र है ? यदि नहीं, तो कृपया विस्तार से कारण बताएं।

2. क्या आपके विचार से अधिकरण के सदस्यों को कार्यकारी दबाव अथवा प्रभाव से मुक्त होने, अन्य शक्ति केन्द्रों से निर्भयता, आर्थिक अथवा राजनैतिक, और उनके वर्ग द्वारा अर्जित और पोषित पक्षपातपूर्ण व्यवहार से स्वतंत्रता प्राप्त होने की ख्याति प्राप्त है ?

3. **संरचना**

(क) क्या आपके विचार से अधिकरणों की वर्तमान संरचना जिसमें एक सदस्य न्यायिक है और दूसरा गैर न्यायिक सिद्धांत सुदृढ़ है और न्याय उद्देश्य प्राप्त करने के लिए संतोषप्रद है ? कृपया अपने विचारों और सुझावों के, यदि कोई हो, समर्थन में कारण बताएं।

(ख) क्या आप इस सुझाव से सहमत होंगे कि इन अधिकरणों में केवल न्यायिक अनुभव प्राप्त व्यक्ति ही होने चाहिए ?

(ग) क्या सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण अथवा आयकर अपील अधिकरण में क्रमशः तकनीकी/लेखाकार सदस्य कर निर्धारक मात्र होंगे अथवा अधिकरण के सदस्य के रूप में निरंतर कार्य करते रहेंगे ?

(घ) न्यायिक सदस्यों के संबंध में, अधिकरण में नियुक्ति के लिए आपके विचार क्या न्यूनतम अर्हता अथवा आवश्यक अनुभव होना चाहिए ?

(ङ) सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण सदस्य (भर्ती और सेवा शर्तें) नियम, 1987 के नियम 10 में सदस्य तथा अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए अर्हता निर्धारित की गई है, इसमें उल्लेख है :

"उच्च न्यायालय का सेवारत न्यायधीश ·········"
अध्यक्ष का पद धारण करेगा......... 62 वर्ष की
आयु तक ·········"

नियम में उच्च न्यायालय के सेवारत न्यायाधीश को, अनुच्छेद 227 के अधीन संवैधानिक उपबंध की दृष्टि से कि वह 62 वर्ष की आयु तक अपना पद धारण करेगा, सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण में पद धारण करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया है। यह सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत है। सेवारत न्यायाधीश, यदि उसे बिना किसी लाभ के उसी आयु में सेवानिवृत्त होना है तो वह सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण में अध्यक्ष के पद पर कार्य करने के लिये क्या आना चाहेगा। आपके विचार से सेवा शर्तों को आकर्षक बनाने के लिए क्या उपयुक्त परिवर्तन किए जाने चाहिए ताकि उच्च न्यायालय का पदासीन न्यायाधीश सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण में अध्यक्ष के पद पर यहां तक कि इसका स्तर बढ़ाने के लिए इसके सदस्य के पद पर नियुक्ति के लिए अपना विकल्प प्रस्तुत कर सके।

ङ(i) उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, क्या आप यह सुझाव देंगे कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की भांति अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की सेवानिवृत्ति आयु बढ़ाकर 65 वर्ष कर दी जानी चाहिए जब कि अन्य सदस्यों के लिए आयुसीमा 62 वर्ष बनी रहनी चाहिए ?

(ii) उपर्युक्त के परिणामस्वरूप, क्या आप यह सुझाव देंगे कि इन अधिकरणों के अध्यक्ष और अथवा उपाध्यक्ष के पद केवल उच्च न्यायालय में सेवारत/सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के लिए ही होने चाहिए अथवा क्या आप इन पदों पर अधिकरणों के न्यायिक और/अथवा तकनीकी अथवा लेखाकार सदस्यों को पदोन्नत कराना चाहेंगे ? क्या आप सदस्यों की पात्रता केवल उपाध्यक्ष के पदों के लिए और वह भी इन पदों के अनुपात तक सीमित रखना चाहेंगे ?

(च) क्या सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की वर्तमान धारा 129(2) में, जिसमें न्यायिक सदस्य के लिए यह उपबंध है कि

"न्यायिक सदस्य ऐसा व्यक्ति होगा जो भारत के राज्य क्षेत्र में कम से कम दस वर्ष तक न्यायिक पद धारण कर चुका है या जो केन्द्रीय विधि सेवा का सदस्य रह चुका है और जिसने उक्त सेवा की श्रेणी-I का पद या उसके समतुल्य या उससे उच्चतर पद कम से कम तीन वर्ष तक धारण किया है या जो कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रहा है।......"

और इसी प्रकार आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 252(2) में सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण)अपील अधिकरण के अध्यक्ष के लिए ऊपर उद्धत अर्हता को देखते हुए संशोधन की आवश्यकता है।

क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि केवल अधिकरण के अध्यक्ष के स्तर को बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है अपितु अधिकरण के सदस्यों का स्तर भी उनके अनुरूप बढ़ाए जाने की आवश्यकता है ?

यह जानते हुए कि पूर्वतर निर्दिष्ट तीन में से दो अर्हताएं ऐसी हैं जिनसे कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति हेतु विचार करने के लिए पात्र समझा जाता है, अध्यक्ष और/अथवा उपाध्यक्ष के लिए निर्धारित किए जाने वाले स्तर के अनुरूप सदस्यों का स्तर बढ़ाना आपके विचार में किस प्रकार संभव है ?

4. क्या कोई पक्षकार अपना मामला शीघ्र निर्णीत करा सकता है, यदि नहीं, तो अधिकरण के समक्ष मामले के अंतिम निपटान में सामान्यतया कितना समय लग जाता है ?

5. **प्रशासनिक प्राधिकरण**

क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि प्रशासनिक नियंत्रण रखने के लिए ऐसा प्राधिकरण होना चाहिए जिसे अधिकरणों के कार्यकरण में प्रशासनिक अनुदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त हो, यदि हां, तो आप किस प्रकार के प्राधिकरण को प्राथमिकता देंगे— भारत का उच्चतम न्यायालय/विधि मंत्रालय/भारत सरकार का वित्त मंत्रालय ?

कृपया अपनी प्राथमिकता के कारण दर्शायें।

6. प्रस्तावित अधिकरणों के चेयरमैन, वाइस चेयरमैन तथा सदस्यों का चयन किस प्राधिकरण द्वारा किया जाना चाहिए—

(क) भारत का मुख्य न्यायाधीश, अथवा

(ख) भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त एक समिति, अथवा

(ग) केन्द्रीय सरकार

6(क) क्या आप इससे सहमत है कि चयन के लिए जो भी प्राधिकरण गठित किया जाए उसे अधिकरण के सभी सदस्यों—न्यायिक तथा तकनीकी दोनों,के चयन का प्रभारी होना चाहिए ?

6(ख) क्या पदोन्नति समिति जैसा एक चयन बोर्ड भी गठित किया जाना चाहिए जो समय-समय पर अधिकरण के सदस्यों को उपाध्यक्ष/अध्यक्ष के पद पर पदोन्नति करने का निर्णय करें, यदि वे नियमों के अनुसार इसके लिए पात्र हो ?

6(ग) क्या अधिकरण के प्रशासन के मामले में आप चयन बोर्ड के लिए किन्हीं और शक्तियों का सुझाव देना चाहते हैं ?

7. **अपील सामान्य**

क्या अधिकरण के निर्णय के विरूद्ध दूसरी अपील का भी प्रावधान होना चाहिए ?

(1) यदि हां, तो क्या दूसरी अपील तथ्यों तथा विधि संबंधी दोनों प्रश्नों पर या केवल विधि के प्रश्नों पर ही होनी चाहिए कृपया अपने कारण स्पष्ट करें।

(2) यदि आप यह सुझाव देते हैं कि अधिकरण के आदेश के विरूद्ध अपील होनी चाहिए तो आपके विचार में अपील किस फोरम में होनी चाहिए,

(क) उच्चतम न्यायालय

(ख) उच्च न्यायालय

(ग) किसी अन्य राष्ट्रालय कर न्यायालय/नए गठित किए जाने वाले अपील अधिकरण में किए जाने के पक्ष में है ?

8. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि अधिकरण द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश की प्रक्रिया (आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 256 तथा सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130 के अधीन) का निराकरण कर दिया जाना चाहिए और इसके बजाय अधिकरण के आदेश के विरूद्ध विधि के किसी सारगर्भित प्रश्न पर उच्च न्यायालय में अपील की जानी चाहिए ?

*8. (क) एक अन्य सुझाव यह है कि निर्देश प्रक्रिया का आंशिक निराकरण करके उच्च न्यायालय को निर्देश करने के लिए प्रथमत: अधिकरण को आवेदन करने की आवश्यकता को हटाकर और, विफल रहने पर, परमादेश (मेंडेमस) के लिए उच्च न्यायालय को आवेदन करके और अधिकरण के आदेश से उत्पन्न केवल विधि के सारगर्भित प्रश्नों पर निर्देश करने के लिए उच्च न्यायालय से निदेश मांगने को एक सरल प्रकिया प्रतिस्थापित करके—

(1) वर्तमान विधि से एक उपाय निकल आएगा जिससे विलंब होता है और जो सम्भवतया अनावश्यक, और

(2) प्रणाली अधिकरण के आदेश पर उच्च न्यायालय में सीधी अपील करने के समान प्रभावी हो जाएगी, इन सुझावों पर आपके विचार क्या है ?

9. यदि आप निर्देश के स्थान पर उच्च न्यायालय में अपील करने के पक्षधर है, तो क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि उच्च न्यायालयों को अधिकरणों की अपीलों की सुनवाई के लिए स्थायी न्यायपीठों का गठन करना चाहिए ?

यदि आप निर्देश करने की वर्तमान प्रणाली से सहमत हैं तो क्या आपके विचार में इस प्रकार के निर्देशों के निपटान के लिए स्थायी न्यायपीठों का गठन करना उपयोगी होगा ?

10. क्या आप इससे सहमत हैं कि आयकर अधिनियम, 1961 के अधीन प्राधिकारियों अथवा सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के निर्णय के विरूद्ध राष्ट्रीय कर न्यायालय अथवा अपील अधिकरण जैसा इतना ही प्रभावकारी फोरम गठित करके संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता निराकृत कर दी जानी चाहिए, यदि हां, तो इस की संरचना किस प्रकार की होनी चाहिए ?

(क) (1) क्या ऐसे न्यायालय या अधिकरण का प्रावधान कर निर्धारितियों के लिए अपील की तीन टीयर प्रणाली के प्रावधान की पुनरावृत्ति नहीं होगी जबकि विधि की अन्य शाखाओं में मुकदमा करने वालों को सामान्यतया अपील की दो टीयर वाली प्रणाली उपलब्ध है ?

(2) यदि आप राष्ट्रीय कर न्यायालय अथवा अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अधिकरण जैसा एक पृथक अपील अधिकरण बनाए जाने के पक्षधर है तो क्या अधिकरण को अपनी बैठक चार क्षेत्रों (उत्तर-दक्षिण, पूर्व और पश्चिम), में कार्य करने वाले न्यायपीठों के माध्यम से करनी चाहिए ?

(3) ये क्षेत्रीय न्यायपीठ आपके विचार से कहां तक सक्षम होंगी

(क) कार्यभार संभालने में जो इस समय कई उच्च न्यायालयों में विभाजित कर दिया जाता है, और

(ख) निर्धारितियों को निकटतम स्थानों पर न्याय उपलब्ध कराने के प्रयोजन को प्राप्त करने में ?

(4) क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायालय अथवा अपील अधिकरण को कर संबंधी विधानों की संवैधानिकता पर विचार करना चाहिए ? क्या इस व्यवस्था पर कोई आपत्ति हो सकती है कि यदि प्रस्तावित अधिकरणों में या तो केवल न्यायिक सदस्य हो अथवा यदि यह प्रावधान हो कि अधिकरण की केवल ऐसे सदस्यों से गठित न्यायपीठ ही ऐसे प्रश्नों पर विचार कर सकेगी ?

(5) एक यह दृष्टिकोण भी है कि जब तक कर संबंधी विधानों की संवैधानिकता निश्चित करने की मूल अधिकारिता प्रस्तावित राष्ट्रीय कर न्यायालय अथवा आय कर अपील अधिकरणों को नहीं दी जाती तो मामले को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में ले जाना पड़ेगा और इससे मामले को शीघ्र निपटाने का प्रयोजन विफल हो जाएगा। इस प्रकार की स्थिति से कैसे निपटा जाए, कृपया कारण स्पष्ट करे ?

11. क्या राष्ट्रीय कर न्यायालय अथवा अपील अधिकरण उच्चतम न्यायालय के प्रशासनिक नियंत्रणाधीन केवल न्यायाधीशों द्वारा ही गठित किया जाना चाहिए ?

12. वर्तमान प्रणाली में, अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष अनुमति याचिका पर उच्चतम न्यायालय में अपील करने के प्रावधान से उच्चतम न्यायालय का कार्यभार बहुत बढ़ रहा है और पक्षकारों को दूरस्थ स्थानों से दिल्ली पहुंचने में बहुत कठिनाई हो रही है क्या आप इस संबंध में कोई संशोधन करना चाहेगें, और यदि हां, तो किस दिशा में ?

13. क्या अधिकरणों की अधिकारिता के बारे में किन्ही परिवर्तनों का सुझाव देना चाहेंगे, यदि हां, तो कृपया कारण सहित विस्तार से अपने सुझाव दें ?

14. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि विभिन्न मामलों पर विचार करने के लिए अधिकरणों के बाहुल्य से भारत में विधि की एकरूपता को खतरा है, यदि हां, तो आप इस संबंध में विचार करने के लिए कोई ठोस सुझाव दें।

15. वर्तमान रूप में गठित आयकर अपील अधिकरण तथा सीमशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण को समाप्त करने और उनके स्थान पर आयकर अधिनियम और सीमाशुल्क अधिनियम से उत्पन्न मामलों की अपीलों पर सुनवाई के लिए एक राष्ट्रीय अधिकरण, जिसकी देश में बहुत सी न्यायपीठ स्थित हों, गठित करने का प्रस्ताव है क्या आप इस प्रस्ताव से सहमत हैं ?

(क) क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि (वर्तमान अधिकरणों के स्थान पर) एक राष्ट्रीय कर न्यायालय अथवा राष्ट्रीय अधिकरण गठित करने से न्यायिक मत में विरोध की जटिल समस्या का प्रभावी रूप से समाधान हो जाएगा और विधि की निश्चितता को प्रोत्साहन मिलेगा अथवा क्या आप यह सुझाव देना चाहेंगे कि विरोधों का विद्यमान होना किसी प्रश्न पर सभी दृष्टिकोणों से पूरी चर्चा को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक और स्वस्थ स्थिति है ?

16. प्रस्तावित राष्ट्रीय अधिकरण का गठन संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन करते हुए तथा निर्देश करने की प्रक्रिया को निरस्त करते हुए संविधान के अनुच्छेद 323ख के अधीन गठित किया जाएगा। क्या आप इस प्रस्ताव से सहमत हैं ?

17. यदि उच्च न्यायालय को अधिकारिता समाप्त कर दी जाती है तो क्या इससे संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय का कार्यभार नहीं बढ़ेगा क्योंकि व्यथित पक्षकार प्रस्तावित अधिकरण के आदेश के विरूद्ध उपर्युक्त प्रावधान के अधीन उच्चतम न्यायालय में जाएगा।

18. प्रस्तावित राष्ट्रीय अधिकरण की, संविधान में संशोधन न होने पर नियमों की संवैधानिकता के प्रश्नों को निश्चित करने में अधिकारिता नहीं होगी और आयकर अधिनियम, सीमाशुल्क अधिनियम तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों की संवैधानिकता को चुनौती देने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का आह्वान करने की संभावना रहेगी। क्या इससे राष्ट्रीय अधिकरण के गठन का उद्देश्य और प्रयोजन समाप्त नहीं हो जाएगा और मामले के निर्णय में विलंब होगा ?

19. क्या आप इस मामले में कोई और सुझाव देना चाहते हैं ?

आयकर तथा सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरणों पर पूरक प्रश्नावली

1. हम प्रश्न 3(ङ) के पश्चात् जोड़ते हैं :

"(ङ)(i) उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, क्या आप यह सुझाव देंगे कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की भांति अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की सेवा निवृत्ति आयु बढ़ाकर 65 वर्ष कर दी जानी चाहिए जबकि अन्य सदस्यों के लिए आयुसीमा 62 वर्ष बनी रहनी चाहिए ?

(ङ)(ii) उपर्युक्त के परिणामस्वरूप, क्या आप यह सुझाव देंगे कि इन अधिकरणों के अध्यक्ष और/अथवा उपाध्यक्ष के पद केवल उच्च न्यायालयों में सेवारत/सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के लिए ही होने चाहिए अथवा क्या आप इन पदों पर अधिकरणों के न्यायिक और/अथवा तकनीकी अथवा लेखाकार सदस्यों को पदोन्नत कराना चाहेंगे ? क्या आप सदस्यों की पात्रता केवल उपाध्यक्ष के पदों के लिए और वह भी इन पदों के अनुपात तक सीमित रखना चाहेंगे ?

2. प्रश्न (3) (च) के दूसरे भाग के अन्त में हम निम्नलिखित जोड़ते हैं :

"यह जानते हुए कि पूर्वतर निर्दिष्ट तीन में दो अर्हताएं ऐसी है जिनसे कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायधीश के पद पर नियुक्ति हेतु विचार करने के लिए पात्र समझा जाता है, अध्यक्ष और/अथवा उपाध्यक्ष के लिए निर्धारित किए जाने वाले स्तर के अनुरूप सदस्यों का स्तर बढ़ाना आपके विचार में किस प्रकार संभव है ?

3. प्रश्न सं. 6 के पश्चात् निम्नलिखित अन्तःस्थापित किय जाए :—

(6क) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि चयन से जो भी प्राधिकरण गठित किया जाए, उसे अधिकरण के सभी सदस्यों— न्यायिक, तकनीकी दोनों का प्रभारी होना चाहिए ?

(6ख) क्या पदोन्नति समिति जैसा एक चयनबोर्ड भी गठित किया जाना चाहिए जो समय-समय पर अधिकरण के सदस्यों को उपाध्यक्ष/अध्यक्ष के पद पर पदोन्नत करने का निर्णय करे यदि वे नियमों के अनुसार इसके पात्र हों ?

(6ग) क्या अधिकरण के प्रशासक के मामले में आप चयनबोर्ड के लिए किन्हीं और शक्तियों का सुझाव देना चाहते हैं ?

5. प्रश्न 8 के पश्चात् हमने निम्नलिखित प्रश्न अन्तःस्थापित किया है :—

(8क) "एक अन्य सुझाव यह है कि निर्देश प्रक्रिया का आंशिक निराकरण करके उच्च न्यायालय का निर्देश करने के लिए प्रथमतः अधिकरण को आवेदन करने को आवश्यकता को हटाकर और, विफल रहने पर, परमादेश (मेंडेमस) के लिए उच्च न्यायालय को आवेदन करके और अधिकरण के आदेश से उत्पन्न विधि के केवल सारगर्भित प्रश्नों पर निर्देश मांगने की एक सरल प्रक्रिया प्रतिस्थापित करके—

(i) वर्तमान विधि से एक उपाय निकल जाएगा जिससे विलम्ब होता है और जो संभवतया अनावश्यक है; और

(ii) यह प्रणाली अधिकरण के आदेशों पर उच्च न्यायालय में सीधी अपील करने के समान प्रभावी हो जाएगी;

इन सुझावों पर आपके विचार क्या हैं ?

6. प्रश्न 10 में (ii) के पश्चात अन्तःस्थापित करें—

(iii) ये क्षेत्रीय न्यायपीठ आपके विचार में कहाँ तक सक्षम होंगी ?

(क) कार्यभार संभालने में जो इस समय कई उच्च न्यायालयों में विभाजित कर दिया जाता है; और (ख) निर्धारितियों को निकटतम स्थानों पर न्याय उपलब्ध कराने के प्रयोजन को प्राप्त करने में ?

7. प्रश्न 10 (iii) में निम्नलिखित जोड़ा जाए :—

"क्या इस व्यवस्था पर कोई आपत्ति हो सकती है ? यदि प्रस्तावित अधिकरणों में या तो केवल न्यायिक सदस्य ही हो अथवा यदि यह प्रावधान हो कि अधिकरणों को केवल ऐसे सदस्यों से गठित न्यायपीठें ही ऐसे प्रश्नों पर विचार करेगा।"

8. प्रश्न 15 के पश्चात् हम निम्नलिखित अन्तःस्थापित करते हैं :—

"(क) क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि (वर्तमान अधिकरणों के स्थान पर) एक राष्ट्रीय कर न्यायालय अथवा राष्ट्रीय अधिकरण गठित करने से न्यायिक मत में विरोध होने की जटिल समस्या का प्रभावी रूप से समाधान हो जाएगा और विधि की निश्चितता को प्रोत्साहन मिलेगा अथवा क्या आप यह सुझाव देना चाहेंगे कि विरोधों का विद्यमान होना किसी प्रश्न पर सभी दृष्टिकोणों से पूरी चर्चा को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक और स्वस्थ स्थिति है ?

अनुबंध-दो

अर्द्ध. शा. सं. 6(3)(21)/93-एल.सी. (एल.एस.)

डॉ. एस. सी. श्रीवास्तव
संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी

भारत सरकार
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय
विधि आयोग
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110 001
दू. भा. 3383682

दिनांक : अगस्त, 1995

महोदय,

विधि आयोग ने, माननीय न्यायाधीशों, विभिन्न अधिकरणों के चेयरमैन/वाइस चेयरमैन, वकीलों, न्यायविदों, शिक्षाविदों तथा राज्य सरकारों आदि के विचार आमंत्रित करने के लिए अपनी दिनांक 4 सितंबर, 1994 के समसंख्यक पत्र द्वारा सेवा अधिकरणों पर एक प्रश्नावलि परिचालित की है। विधि आयोग बहुत से विशिष्ट व्यक्तियों की विभिन्न प्रतिक्रियाएं प्राप्त करके अत्यन्त लाभान्वित हुआ है। उन विचारों का अनुसरण करने के पश्चात्, यह महसूस किया गया है कि सेवा अधिकरणों के बारे में प्रश्नावली को और विस्तृत बनाया जाए ताकि उच्चतम न्यायालय की प्रतिक्रियाओं और टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, विशेषकर न्यायिक पुनर्विलोकन, संविधान के मूल लक्षण की अवधारणा के संबंध में, अधिकरणों के कार्यकरण पर एक व्यापक परिदृश्य में विचार किया जा सके। सेवा अधिकरणों पर एक विस्तृत प्रश्नावलि तैयार की गई है जो इसके साथ संलग्न की जा रही है। आयोग संलग्न प्रश्नावलि पर आपके बहुमूल्य विचार आमंत्रित करता है ताकि वह विषय पर एक व्यापक रिपोर्ट तैयार कर सके। कुछ प्रश्नों के सेवा अधिकरणों पर पहली प्रश्नावलि में भी पाये जाने की संभावना है और उन मामलों पर आप अपने बहुमूल्य विचार पहले ही भेज चुके होंगे। ऐसी स्थिति में आपको उनकी पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है।

आर. के. जैन बनाम भारत संघ (1993) 4 सु को. 119 मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के कुछ उद्धरण, जिनके कारण आयोग ने यह कार्य किया, आपके निर्देश के लिए संलग्न किए जा रहे हैं।

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हम आपसे अनुरोध करते हैं कि संलग्न प्रश्नावलि में उठाए गए प्रश्नों पर अपने बहुमूल्य विचार शीघ्र भेजने के लिए 15 सितंबर, 1995 तक अपने व्यस्त समय से थोड़ा समय निकालें।

यह अयोग प्रशासनिक अधिकरण और उनके कार्यकरण पर अक्तूबर, 1995 में एक कार्यशाला आयोजित करने का विचार कर रहा है। इस कार्यशाला में आगे विचार विमर्श करने के लिए आपके बहुमूल्य विचार आयोग के लिए बहुत सहायक सिद्ध होंगे।

आपके सहयोग की आकांक्षा में

सादर

भवदीय,
(एस. सी. श्रीवास्तव)

संलग्नक : यथापरि

आर. के. जैन बनाम भारत संघ (1993) 4 सु. को. 120 मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से उद्धरण

8. अन्त में, संविधान में अनुच्छेद 323-क और 323-ख अन्त:स्थापित कर दिए जाने के पश्चात्, देश में गठित विभिन्न अधिकरणों के कार्यकरण पर ध्यान देने का यह उपयुक्त समय है। विधि सम्मत शासन को समर्पित किसी देश के प्रभावी प्रशासन के लिए एक सुदृढ़ न्याय परिदान प्रणाली अनिवार्य है। एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्याय परिदान प्रणाली से ही, जिसमें लोगों का विश्वास निहित है, अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। इन दोनों अनुच्छेदों के अन्त:स्थापित हो जाने के पश्चात्, बहुत से अधिनियम बनाए गए हैं जिनके अधीन न्याय प्रदान करने के लिए अधिकरण गठित किए गए हैं। इस दृष्टि से कि जिन उद्देश्यों और प्रयोजनों से इन अधिकरणों का गठन किया गया क्या वे पूरे हुए हैं ? स्थिति का मूल्यांकन करने हेतु इन विगत कुछ वर्षों में अनुभव प्राप्त हुए हैं और पर्याप्त समय भी व्यतीत हो चुका है। अन्य अधिकरणों के कार्यकरण के बारे में भी शिकायतें सुनी गई हैं और यह उपयुक्त समय है जब भारत के विधि आयोग जैसे निकाय ने अधिकरणों के कार्यकरण में सुधार करने के लिए उपायों का सुझाव देने की दृष्टि से इस विषय का गहन अध्ययन किया है। वह निकाय विभिन्न विधियों में परिवर्तन के सुझाव भी दे सकता है और एक प्रतिमान विकसित कर सकता है जिसके आधार पर अधिक स्वतंत्रता सुनिश्चित कराने की दृष्टि से अधिकरण गठित और पुनर्गठित किए जा सकते हैं। विभिन्न अधिनियमों के अपील अधिकरणों के गठन के बारे में, उनकी स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की दृष्टि से ताकि इन अधिकरणों के प्रति लोक विश्वास बढ़ सके और उनके कार्यकरण की गुणवत्ता में सुधार हो सके, विधि आयोग द्वारा गहन और व्यापक अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है। हम सिफारिश करते हैं कि भारत का विधि आयोग प्राथमिकता के आधार पर इस प्रकार का अध्ययन करे। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा इस निर्णय की एक प्रति तुरन्त कार्यवाही करने के लिए आयोग के सदस्य-सचिव को भी भेजी जाएगी।

66. **एस. पी. संपत कुमार** बनाम **भारत संघ** मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायपालिका का मूलभूत कार्य संविधान तथा विधियों का निर्वचन करना है और न्यायपालिका द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए सर्वाधिक उचित मामला है क्योंकि इस क्षेत्र में केवल न्यायपालिका को ही विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है और दूसरे यदि कार्यपालिका द्वारा किए गए कार्यों की वैधता निश्चित करने का कार्य भी उसी पर छोड़ दिया जाए तो नागरिकों को प्रदान की गई संवैधानिक और विधि संबंधी सुरक्षा भ्रम बनकर रह जाएगी। अत: विवादों के समाधान के लिए संविधान में एक स्वतंत्र तंत्र अर्थात् न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है जिसे विधायी और कार्यकारी कृत्यों की वैधता निश्चित करने तथा कार्यपालिका और अन्य प्राधिकारियों द्वारा विधि की अपेक्षाओं का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान की गई है। न्यायपालिका द्वारा यह कार्य न्यायायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का उपयोग करके पूरा किया जाता है जो न्यायपालिका के हाथों में विधि सम्मत शासन के अनुरक्षण के लिए एक सशक्त हथियार है। न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति हमारी संविधान प्रणाली का एक अभिन्न अंग है और इसके अभाव में न विधि सम्मत सरकार होगी और विधि सम्मत शासन एक भ्रम तथा अवास्तविकता का वचन मात्र रह जाएगा। अत: **न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान का मूल तथा अनिवार्य तत्व है और संविधान के मूल ढांचे को प्रभावित किए बिना इसे निराकृत नहीं किया जा सकता।** न्यायिक पुनर्विलोकन के मूल तथा अनिवार्य तत्व का त्याग नहीं किया जा सकता परन्तु संविधान में संशोधन करना तथा न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए वैकल्पिक संस्थागत तंत्र अथवा व्यवस्था उपलब्ध कराना, बशर्ते कि यह उच्च न्यायालय से कम प्रभावकारी न हो, संसद के अधिकार क्षेत्र में है। अत: यह संविधान योजना में निहित समझा जाना चाहिए कि अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन करने वाली विधि द्वारा कोई शून्य नहीं छोड़ा जाना चाहिए अपितु **इसे एक अन्य प्रभावी संस्थागत तंत्र अथवा प्राधिकरण स्थापित करना चाहिए और उसमें न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति निहित करनी चाहिए और यह तंत्र न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का उपयोग करने में उतना ही प्रभावी और प्रभावकारी होना चाहिए।** प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन गठित अधिकरण को बहुत से मामलों में अनुच्छेद 14, 15, 16 और 311 का निर्वचन तथा उपयोजन करना था। अत: प्रशासनिक अधिकरण के सदस्यों के लिए केवल न्यायिक दृष्टिकोण अपेक्षित है अपितु संवैधानिक और प्रशासनिक विधि की विशेष शाखा का ज्ञान तथा विशिष्टि ज्ञान होना भी आवश्यक है। प्रशासनिक अधिकरण की प्रभावकारिता विधायी आदान नि:संदेह बहुत महत्वपूर्ण है और विधायी आदान को पर्याप्त महत्व न देने से प्रशासनिक अधिकरण की प्रभावकारिता और प्रभावशीलता का निश्चित रूप से ह्रास होगा। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि सदस्यों की नियुक्ति के लिए और अधिकरण के चेयरमैन/वाइसचेयरमैन तथा सदस्यों की नियुक्ति के लिए सिफारिश करने और सदस्यों की नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक समिति गठित करने के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने के लिए उपयुक्त नियम बनाया जाना चाहिए। **एन. बी. मजूमदार** बनाम **भारत संघ** के मामले में जब केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सदस्यों ने उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को उपलब्ध वेतन तथा सेवानिवृत्ति आयु की मांग की तब इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि **वे न्यायाधीशों** के समान नहीं है परन्तु उनकी नियुक्ति के लिए संविधान के अनुच्छेद 323-क के अनुसरण में **एक पृथक तंत्र** बनाया गया है। अत: संपत कुमार के मामले में इस न्यायालय का तात्पर्य यह था कि अधिकरण जब अपनी शक्तियों और कृत्यों का उपयोग करते हैं, अधिनियम ने सेवा संबंधी विवदों के न्याय निर्णय के लिए संस्थागत वैकल्पित तंत्र अथवा प्राधिकरण की व्यवस्था की है। इसे न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने में प्रभावी और प्रभावकरी होना चाहिए। इस न्यायालय का यह तात्पर्य नहीं था कि अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय के स्थानापन्न है। **जे. बी. चोपड़ा** बनाम **भारत संघ** मामले में संपत कुमार के अनुपात का केवल अनुसरण किया गया।

76. मामले से विलग होते हुए न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए बनाए गए वैकल्पिक तंत्र की निष्प्रभाविता पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक हो जाता है । न्यायिक पुनर्विलोकन और उपचार, नागरिकों के मूल अधिकार हैं। अधिकरणों द्वारा न्याय प्रदान करने की व्यवस्था में बहुत कमियां हैं। हमें सदस्यों अथवा वाइस चेयरमैनों (गैर-न्यायाधीश) की योग्यता में कोई संदेह नहीं है जो अपनी नियमित सेवा में विशेषज्ञ हो सकते हैं। परन्तु न्यायिक न्यायनिर्णय एक विशिष्ट प्रकिया है और अधिवक्ता न्यायाधीशों द्वारा ही उसे कुशलतापूर्वक क्रियान्वित किया जा सकता है। विशेष अनुमति याचिका द्वारा अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील करना महंगा भी है और प्रतिवैधात्मक भी तथा स्थानों का दूर-दूर होना भी निरन्तर रूप में अवरोधक है क्योंकि मुकदमें के लिए दूर स्थानों से उच्चतम न्यायालय में पहुँचना लोगों के लिए काफी कष्टकारक है। अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध विधि संबंधी प्रश्नों पर संबंधित उच्च न्यायालय के दो न्यायधीशों की न्यायपीठ को अपील करने की व्यवस्था से जो लोग उच्च न्यायालय तक नहीं पहुंच सकते उनकी न्याय प्राप्त न होने की भावना शांत होगी। इसके साथ-साथ अधिकरण के सदस्यों के रूप में ''बार'' के सदस्यों को नियुक्त करने तथा अधिकरणों की कार्यप्रणाली को एक नया रूप देना और उस पर नियत रूप से निगरानी रखना भी उतना ही आवश्यक है। भारत का विधि आयोग जैसा एक स्वतंत्र निकाय इस विषय में गहन अध्ययन करेगा और आयकर अपील अधिकरण के समान सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण को विधि तथा न्याय विभाग के अधीन लाने की वांछनीयता पर विचार करेगा और भारत सरकार को तत्काल उपयुक्त सिफारिश करने जो अवरोधों और कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक विधान बनाकर उपचारात्मक कदम उठाएगी और अधिकरणों को न्यायिक पुनर्विलोकन को प्रभावकारी, कम खर्चीला और संतोषप्रद बनाएगी।

भारत का विधि आयोग

प्रशासनिक अधिकरणों पर पुनरीक्षित अतिरिक्त प्रश्नावली

विषय सूची

भाग-एक केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण

खंड-एक प्रशासनिक अधिकरणों का कार्यकरण संरचना में प्रस्तावित परिवर्तन तथा एक प्रभावकारी फोरम उपलब्ध कराने के लिए किए जाने वाले उपाय

खंड-दो संविधान के मूल तत्त्व-न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता को पूरा करने के प्रयोजन से केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण को उच्च न्यायालय का सही विकल्प बनाने के लिए प्रस्ताव

खंड-तीन संरचना तथा कार्यकरण में प्रस्तावित परिवर्तन

भाग-दो अपीलीय फोरम का बनाया जाना

खंड-एक उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ को अपील

खंड-दो प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अधिकरण को अपील

खंड-तीन न्यायिक पुनर्विलोकन की अपेक्षाओं का पूरा करने के लिए एक अपीलीय फोरम का बनाया जाना।

प्रशासनिक अधिकरणों पर पुनरीक्षित अतिरिक्त प्रश्नावली

भाग-एक केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण

खंड-एक प्रशासनिक अधिकरणें का कार्यकरण: संरचना में प्रस्तावित परिवर्तन तथा एक प्रभावकारी फोरम उपलब्ध कराने के लिए किए जाने वाले उपाय

1. क्या आपके विचार में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन प्रशासनिक और न्यायिक सदस्य नियुक्त करने की वर्तमान व्यवस्था संतोषप्रद है और प्रभावी रूप में कार्य कर रही है ?

2. क्या प्रशासनिक सदस्य को सदैव न्यायिक सदस्य के साथ न्यायपीठ में बैठना चाहिए ?

3. क्या प्रशासनिक सदस्य के विषय संबंधी विशेषज्ञान का प्रयोग करके जटिल प्रशासनिक मामलों को अधिक प्रभावी रूप से निपटाने में प्रशासनिक सदस्य की सहायता आवश्यक है ?

4. क्या आपके विचार में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 6(3)(ख) के प्रावधान अर्थात् कोई व्यक्ति न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह भारतीय विधि सेवा का सदस्य रह चुका हो और जिसने उस सेवा की श्रेणी-1 का पद कम से कम तीन वर्ष तक धारण किया है, वास्तव में उच्च न्यायालय के समान प्रभावशालीता, प्रभावकारिता, मानक और स्तर प्राप्त करने में सहायक हुए हैं, यदि नहीं, तो इस पर आपके क्या सुझाव है ?

5. क्या विधि मंत्रालय भारत सरकार के सभी विभागों से तथा राज्य सरकारों के विधायी विभागों के विधि संबंधी मामलों को संभालने वाले भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समान स्तर का पद धारण करने वाले व्यक्तियों को सम्मिलित करके न्यायिक सदस्यों के रूप में व्यक्तियों की पात्रता के स्त्रोत क्षेत्र का विस्तार करने का सुझाव देना चाहेंगे ?

6. क्या प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन गठित अधिकरण विधि और न्याय मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रणाधीन रखा जाना चाहिए ?

7. क्या ऐसे मामलों के बारे में, जो केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण अथवा राज्य प्रशासनिक अधिकरण की एकल सदस्यीय न्यायपीठ द्वारा सुने जाएंगे, आवश्यक नियम बनाए जाने चाहिए ?

8. एकरूपता लाने और अधिकारिता के उचित उपयोग की सुविधा के लिए केन्द्र/राज्य प्रशासनिक अधिकरण की अधिकारिता के अधीन आने वाले मामलों के संबंध में एकल सदस्यीय या खंड न्यायपीठ द्वारा निपटाए जाने वाले मामलों के नियतन के संबंध में आप क्या सुझाव देना चाहेंगे ?

9. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि जहां केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण या राज्य प्रशासनिक अधिकरण की न्यायपीठों में केवल एक ही सदस्य अपेक्षित है वहां सदस्य आवश्यक रूप से न्यायिक सदस्य ही होना चाहिए ?

10. क्या न्यायपीठ में न्यायिक सदस्य के साथ बैठने वाले प्रशासनिक सदस्य को केवल निर्धारण की हैसियत से ही बैठना चाहिए ? क्या उसकी भूमिका केवल तथ्यों के मूल्यांकन तक ही सीमित रहनी चाहिए ?

11. क्या आपके विचार में यदि न्यायपीठ में दो सदस्य हैं तो क्या उसका अध्यक्षपीठ केवल न्यायिक सदस्य ही होना चाहिए।

12. क्या एकल सदस्यीय न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध अपील क्रमश: केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण या राज्य प्रशासनिक अधिकरण की एक बड़ी न्यायपीठ में की जानी चाहिए।

13. क्या केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण की संबंधित बड़ी बैंच उचित सूचना के पश्चात् अपील ग्रहण करने के लिए विज्ञापित कर सकती है और अपील यदि चलाए जाने योग्य नहीं है तो उसे ग्रहण करने के लिए स्तर पर ही निपटा सकती है।

खंड-दो संविधान में मूल तत्त्व न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता को पूरा करने के प्रयोजन से केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण को उच्च न्यायालय का सही विकल्प बनाने के लिए प्रस्ताव।

14. क्या आपके विचार में वर्तमान केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण का स्तर उनकी संरचना, सेवा शर्तें, पात्रता मापदंड और यहां इसके पश्चात् सुझाए गए रूप में मामलों का निपटारा करने सहित सभी मामलों में तथा निम्नलिखित प्रावधान करके उच्च न्यायालय के समान बढ़ाया जा सकता है :—

(एक) कि इन अधिकरणों में केवल न्यायिक सदस्य ही होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान हो सक्षम होंगे,

(दो) प्रशासनिक सदस्य की भूमिका केवल एक निर्धारक की होगी,

(तीन) निर्णय करने की शक्ति केवल न्यायिक सदस्य को ही प्राप्त होगी चाहे वह मामले के नियतन के अनुसार एकल सदस्यीय न्यायपीठ में हों या खंड न्यायपीठ में

15. यदि हां, तो क्या इस प्रकार की प्रस्तावित संरचना से केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण उच्च न्यायालय का वास्तविक स्थानापन्न हो जाता है जो केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य ए. आई. आर. 1973, सु.को. 1461 और मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (1980) 3 सु. को. 625 में निर्धारित संविधान के मूल तत्व की आवश्यकता को पूरा कर सकेगा?

16. यदि उक्त प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक है, तो क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन वैध और न्यायोचित है और न्यायिक पुनर्विलोकन की अपेक्षा, संविधान का मूल तत्त्व, निष्प्रभावित रहती है।

खंड-तीन —संरचना तथा कार्यकरण में प्रस्तावित परिवर्तन

17.(क) क्या दिल्ली स्थित प्रस्तावित केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में—

(क) चेयरमैन,

(ख) न्यायिक सदस्य, और

(ग) प्रशासनिक सदस्य (केवल निर्धारक की भूमिका हेतु) होना चाहिए?

(ख) क्या विभिन्न स्थानों पर केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की प्रस्तावित न्यायपीठ में—

(क) वाइस चेयरमैन,

(ख) न्यायिक सदस्य, और

(ग) प्रशासनिक सदस्य (निर्धारक के रूप में कार्य करने हेतु) होने चाहिए?

18. क्या ऐसे प्रत्येक प्रस्तावित राज्य प्रशासनिक अधिकरण में—

(क) चेयरमैन,

(ख) वाइस चेयरमैन,

(ग) न्यायिक सदस्य, और

(घ) प्रशासनिक सदस्य (निर्धारक की भूमिका हेतु) होने चाहिए?

19. क्या केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण का चेयरमैन नियुक्त होने के लिए कोई व्यक्ति पात्र होगा यदि वह—

(क) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है अथवा रहा है, अथवा

(ख) कम से कम दो वर्ष तक वाइस चेयरमैन का पद धारण कर चुका है जैसा कि प्रश्न सं. 20 में सुझाव दिया गया है

20. क्या कोई व्यक्ति केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण का वाइस चेयरमैन नियुक्त होने के लिए पात्र होना चाहिए, यदि वह—

(क) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, अथवा

(ख) कम से कम दो वर्ष तक न्यायिक सदस्य का पद धारण कर चुका है जैसा कि प्रश्न सं. 4 में सुझाव दिया गया है।

21. क्या कोई व्यक्ति केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण का न्यायिक सदस्य नियुक्त होने के लिए पात्र होना चाहिए यदि वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है अथवा रहा है या जिला न्यायाधीश

रहा है और कम से कम 10 वर्ष तक न्यायिक पद धारण कर चुका है अथवा उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए अर्हित है ?

22. क्या केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के चेयरमैन, वाइस चेयरमैन और सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश अथवा उनके द्वारा मनोनीत उच्चतम न्यायालय के किसी पदासीन न्यायधीश की अध्यक्षता में और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के मामले में राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अथवा राज्य के उच्च न्यायलय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मनोनीत किसी अन्य पदासीन न्यायाधीश की अध्यक्षता में गठित स्थायी उच्च शक्ति प्राप्त चयन समिति द्वारा किया जाना चाहिए जैसा कि एस. पी. संपत कुमार बनाम भारत संघ (1987)1 सु.को. 124 में सुझाव दिया गया है ?

23. क्या कोई ऐसी समय सीमा होनी चाहिए जिसके अन्दर अधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति के प्रस्तावों पर कार्यवाही की जाए और प्रत्येक अधिकरण में सदस्यों की अधिकतम संख्या पाक्षिक पुनरीक्षा की जानी चाहिए ताकि सदस्य की नियुक्ति के अभाव में मामलों के निपटान में विलम्ब से बचा जा सके ?

24. क्या केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण का प्रशासनिक सदस्य नियुक्त होने के लिए कोई व्यक्ति पात्र होगा यदि वह भारत सरकार के सचिव के पद पर अथवा राज्य सरकार में ऐसे किसी पद पर रहा है जिसका वेतनमान भारत सरकार के सचिव के वेतनमान से कम न हो ?

25. क्या आप इससे सहमत हैं कि यदि केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण के गठन और कार्यकरण में उपर्युक्त परिवर्तन किए जाते हैं तो क्या वे सभी प्रकार से उच्च न्यायालय के विकल्प नहीं हो जायेंगे जो संविधान के मूल तत्व-न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता को पूरा कर सकेंगे ?

भाग-दो —अपील फोरम का बनाया जाना

26. क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील होनी चाहिए, यदि हां तो अपीलीय फोरम का स्वरूप और ढांचा किस प्रकार का होना चाहिए ?

खंड-एक-उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ को अपील

27. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि अधिकरणों के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में विधि संबंधी प्रश्नों के बारे में की गयी अपीलों पर सुनवाई होनी चाहिए और मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाना सुनिश्चित करने के उद्देश्य से उच्च न्यायालयों को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के कर्मचारियों के केवल सेवा संबंधी मामलों के लिए स्थायी सेवा न्यायपीठों का गठन करना चाहिए ?

खंड-दो—प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण को अपील

28. क्या आप सहमत हैं कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के निर्णयों के विरुद्ध प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण में अपील की जानी चाहिए ?

29. क्या आप यह सुझाव देंगे कि प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण दिल्ली स्थित होना चाहिए और देश के विभिन्न भागों में इसकी चार अन्य न्यायपीठ होनी चाहिए ?

30. क्या राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण का अधिकरण की सभी अन्य न्यायपीठों पर प्रशासनिक वित्तीय तथा अन्य मामलों में समग्र नियंत्रण होना चाहिए ?

31. क्या दिल्ली स्थित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण में—

(क) चेयरमैन और

(ख) केवल एक या दो न्यायिक सदस्य होने चाहिए ?

32. क्या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण की प्रत्येक अन्य न्यायपीठों में एक वाइस चेयरमैन तथा एक या दो अथवा दो या दो से अधिक सदस्य होने चाहिए ?

33. क्या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण के चेयरमैन, वाइस चेयरमैन और सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायधीश अथवा उनके द्वारा मनोनीत उच्चतम न्यायालय के पदासीन न्यायधीश की अध्यक्षता में एक स्थायी उच्च शक्ति प्राप्त चयन समिति द्वारा की जानी चाहिए जैसाकि एस. पी. संपत कुमार बनाम भारत सरकार मामले में सुझाव दिया गया है ?

34. क्या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण के चेयरमैन के रूप में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति यदि वह भारत के उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायधीश अथवा न्यायधीश रहा है पात्र होना चाहिए ?

35. क्या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण के वाइस चेयरमैन के पद पर नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति को यदि वह या तो उच्चतम न्यायालय का न्यायधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायधीश रहा हो पात्र समझा जाना चाहिए ?

36. क्या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपीलीय अधिकरण के न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति को यदि वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है पात्र समझा जाना चाहिए ?

37. क्या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण के चेयरमैन, वाइस चेयरमैन और सदस्य की नियुक्ति के लिए कार्यकाल इस प्रावधान के साथ, तीन वर्ष होना चाहिए, कि परिस्थिति के अनुसार तीन वर्ष की अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति भी की जा सकेगी ?

38. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण तथा उसकी न्यायपीठों के आदेश अंतिम होंगे और उनके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई अपील नहीं की जा सकेगी ?

39. क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण को निम्नलिखित आधारों पर ही अपील की जा सकेगी :—

(क) मूल अधिकारों का अतिक्रमण,

(ख) अधिकारिता का न होना अथवा अतिव्याप्ति,

(ग) सामान्य महत्व का विधि संबंधी सारगर्भित प्रश्न,

(घ) विधि संबंधी त्रुटि, अथवा रिकार्ड में प्रत्यक्ष त्रुटि, और

(ड़) गलत निष्कर्ष।

40. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरण, जैसा भी हो, जिसके आदेश के विरुद्ध अपील की जानी है उसकी संबंधित न्यायपीठ में अपील दायर की जाएगी, यदि हाँ तो अधिकरण का रजिस्ट्रार उसे प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण की संबंधित न्यायपीठ को अग्रेषित करेगा। प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण की न्यायपीठ अपील ग्रहण के लिए अंतिम तिथि निर्धारित करेगी और संबंधित पक्षकारों को सूचित करेगी। तत्पश्चात् अपील राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील पर अधिकरण की संबंधित न्यायपीठ द्वारा सुनवाई की जाएगी। तथापि, अत्यावश्यक मामलों में, जिनमें कार्यवाही रोकने तथा अन्य मामले अन्तर्ग्रस्त हो, व्यथित पक्षकार प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण की संबंधित न्यायपीठ में अपील सीधे दायर कर सकता है ?

41. क्या राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण की संबंधित न्यायपीठ को अपील ग्रहण स्तर पर ही यदि अपील चलाए जाने योग्य नहीं है, उसे निपटा दिए जाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए ?

42. क्या अपील निपटाए जाने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित होनी चाहिए, यदि हां तो समय सीमा क्या होनी चाहिए ?

43. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण की एकल सदस्यीय न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध बड़ी न्यायपीठ को अपील करने के प्रस्तावित प्रावधान को देखते हुए केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण की एकल सदस्यीय न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण में कोई अपील नहीं की जा सकेगी ?

44. क्या इस प्रकार की अपील निपटाए जाने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित होनी चाहिए, यदि हां, तो क्या ?

खंड-तीन—अपील फोरम का बनाया जाना और न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता

45. क्या उच्च न्यायालयों में स्थायी सेवा न्यायपीठ या प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रशासनिक अपील अधिकरण गठित करने के प्रावधान से न्यायिक पुनर्विलोकन की अपेक्षा पूरी हो जाएगी जो संविधान का मूल तत्व है जैसा कि केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य ए.आई.आर. 1973 सु.को. 1461 और मिनर्वा मिल लिमिटेड बनाम भारत संघ (1980) 3 सु. को. 625 मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है ?

46. यदि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक है तो, क्या अपील के रूप में उतना ही प्रभावकारी और शीघ्रगामी उपाय उपलब्ध होने के कारण केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरण के निर्णयों के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अपवर्जन किया जा सकता है और इससे संविधान के मूल तत्व-न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता भी पूरी हो सकती है ?

47. न्यायिक पुनर्विलोकन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध किये जा रहे प्रस्तावित अपील फोरम के प्रावधान की दृष्टि से प्रश्न सं. 4, 5, 9 और 11 में सुझाए गए संशोधनों के अध्यधीन क्या वर्तमान संरचना जारी रह सकती है ?

48. कोई अन्य सुझाव जो आप देना चाहते हों।

MGIPRRND—58 LJ&CA/2000—100.

PLD.92.CLXII (Hindi)
100–2000–DSK IV

मूल्य { देश : 2031.00 रुपए
विदेश : £ 27.18 या $ 115.67

Printed by the Manager, Govt. of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054 — 2000